



प्रसाद

प्रमाद

लेखक

प्रकाश 'भारती'



भारती साहित्य सदन - नई दिल्ली

प्रकाशक :
भारती साहित्य सदन ©
३०/६० कनॉट सरकस, नई दिल्ली–१

मूल्य : २॥)
पुस्तकालय संस्करण, मई १९६१

आवरण शिल्पी : पाल बन्धु

मुद्रक :
श्री गोपीनाथ सेठ
नवीन प्रेस, दिल्ली

भूमिका

शताब्दियों से दासता की शृंखलाओं में बंधा देश स्वतन्त्र तो हो गया, परन्तु प्राचीन भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति के आधार पर विकास होने की अपेक्षा, देश की जनता में मानसिक दासता, स्वार्थ-परता और चरित्रहीनता अधिक पनपने लगी है। क्यों ?

क्या धर्म का ह्रास इसमें कारण नहीं है ?

'प्रमाद' उपन्यास इसी आधार पर है।

—प्रकाश

एक ○○○

उच्च शिक्षा प्राप्त कर लेने तथा अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति हो जाने पर कितनी प्रसन्नता होती है ! फिर वह शिक्षा जब एक भारतीय युवक किसी विदेशी विश्वविद्यालय में पाता है तो उसके गर्व का पारावार नहीं रहता ।

ठीक यही अवस्था दिल्ली के निवासी सोहनलाल की थी । वह कोट-पतलून पहने जहाज के डैक पर खड़ा, समुद्र में उठती लहरों को देख रहा था । उसके होंठों पर हलकी-सी मुस्कराहट थी, मानो भूत की मधुर स्मृति में खो-सा गया हो ।

वास्तव में बात ही कुछ ऐसी थी । वह लन्दन से डॉक्टरेट लेकर भारत लौट रहा था । नई-नई उमंगें थीं उसके मन में और थे सुन्दर तथा उज्ज्वल भविष्य के मधुर स्वप्न !

सोहनलाल को उसके पिता ने बाल्यकाल से ही लन्दन के पब्लिक स्कूल में प्रविष्ट करवा दिया था । उस समय उसकी आयु केवल बारह वर्ष की थी । सोहन को आज भी वह लन्दन का पब्लिक स्कूल ईटन स्मरण था, जहाँ उसको पहले-पहल विद्यार्थियों का जीवन देख कुछ आश्चर्य सा हुआ था । ईटन लन्दन के प्राचीन स्कूलों में से है । विंचेस्टर के पश्चात् ईटन का ही नम्बर आता है । १४४० में स्थापित हुआ यह स्कूल बीसवीं शताब्दी में भी वैसे ही नवीन था, जैसे आधुनिक काल का एक शिक्षा केन्द्र हो ।

ईटन का शिक्षा स्तर सर्वोच्च माना जाता है । अतएव सोहनलाल के पिता ने अपने एकमात्र पुत्र को इसमें प्रविष्ट कराया था । इसमें बड़े-

बड़े रईसों तथा राज-परिवारों के बच्चे पढ़ते थे। इस स्कूल में शिक्षा पाने से सोहन मन और स्वभाव से अंग्रेज बालकों की भाँति बनता जा रहा था।

स्कूल की शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् उसने ऑक्सफोर्ड में प्रवेश किया था। उसका मुख्य विषय विज्ञान था। वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर अपने देश में अनुसन्धान करने की आकांक्षा रखता था। अतः वह शिक्षा प्राप्त कर भारत आ रहा था।

सोहन कितनी देर तक समुद्र में उठती लहरों को देखता रहा। सूर्य की स्वर्ण-रश्मियाँ उछलते पानी पर पड़तीं तो सोहन का मानव-हृदय प्रफुल्लित हो उठता। वह अपनी धुन में मग्न खड़ा था कि पीछे से एक लम्बे-तगड़े युवक ने आकर कहा, "गुडमॉर्निंग सोहन !"

सोहन ने घूमकर देखा और गुडमॉर्निंग कहकर पुनः लहरों का दृश्य देखने लगा।

"आज तुम जल्दी कैसे उठ गए ?" विनोद ने सिगरेटकेस सोहन के सम्मुख करते हुए पूछा।

"नो, थैंक्स। मैं इस समय सिगरेट पीने के मूड में नहीं हूँ।"

"तो क्या 'रोमैन्टिक मूड' में हो ?" विनोद ने व्यंग से कहा। अपना सिगरेट सुलगाया और धुआँ छोड़ते हुए वह भी शीतल पवन का आनन्द लेने लगा। कुछ क्षण तक निस्तब्धता छाई रही। विनोद ने कहा, "क्या सोच रहे हो भाई ! कुछ बात भी करो। अभी तो एक सप्ताह और इसी जहाज में रहना है। ऐसे यहाँ खड़े रहने से तो 'सी सिकनैस' होने का डर है। चलो, भीतर चलकर बैठते हैं।"

सोहन मुस्करा दिया। विनोद के मुख पर देखते हुए बोला, "तुम डॉक्टर हो। इसलिए तुम्हें अधिक सतर्क रहना चाहिए।"

"और तुम कोई अनुसंधान करने की सोच रहे हो ?"

"वे तो अब जीवन-भर करने ही हैं। इस समय तो मैं लन्दन की याद में खोया हुआ था।"

"ओह ! तो यह बात है। तब तुम्हारा दोष नहीं भाई ! लन्दन का

विचार आते ही मनुष्य का मूड बदल जाता है ।"

"क्या तुम भी 'रोमैन्टिक मूड' में आने लगे ?" सोहन ने व्यंग से हंसते हुए कहा ।

विनोद भी हंस पड़ा और दोनों साथी कमरे में चले आये ।

दोनों बहुत प्रसन्न थे। वर्षों बाद अपने देश को लौट रहे थे। एक डॉक्टर था, दूसरा वैज्ञानिक । इस पर भी दोनों के स्वभाव भिन्न-भिन्न थे । एक बचपन से ही लन्दन चला गया था, दूसरा सज्ञान होने पर । एक का पूर्ण व्यय उसके पिता ने वहन किया था और दूसरे को सरकार से कुछ सहायता मिलती रही थी ।

दोनों की प्रथम भेंट लन्दन के एक सिनेमा हॉल में हुई थी । सोहन फ़िल्म देखने में तल्लीन था । विनोद देर से आया था । हॉल में अंधेरा था । टार्च हाथ में लिये एक 'गाइड' ने विनोद को सोहन के साथ के रिक्त स्थान पर बिठा दिया । कुछ क्षण पश्चात् अँधेरे का अभ्यस्त हो जाने पर, जब विनोद को अपने आसपास बैठे व्यक्ति दिखाई देने लगे तो उसने अपने दाएं-बाएँ साथियों के मुख पर देखा । उसकी दूसरी ओर एक प्रौढ़ावस्था की स्त्री बैठी थी ।

सोहन को हिन्दुस्तानी युवक देख विनोद का मन उससे परिचय करने को हो आया । परिचय तो विश्राम-काल में अथवा चित्र समाप्त होने पर भी हो सकता था । वह इसके लिए इतना अधिक उत्सुक भी नहीं था । वास्तव में विनोद फ़िल्म का प्रारम्भ जानने का इच्छुक था । अतः साथ बैठे युवक को अपनी तरह विद्यार्थी समझ हिन्दी में ही पूछ लिया कि फ़िल्म कितनी चल चुकी है । यह भारतीय ढंग था । परन्तु सोहन तो इससे उत्तेजित हो गया और अंग्रेजी में बोला, "यू सीम टू बी ए स्टूपिड' (तुम मूर्ख मालूम होते हो) ।"

इस उत्तर से विनोद को क्रोध चढ़ आया । उसके मन में आया कि इस बदतमीज के मुख पर एक झापड़ रसीद करे, किन्तु साथ ही उसने सोचा कि इससे हॉल में हल्ला होगा । सब दर्शकों का ध्यान दो परस्पर झगड़ते

हुए हिन्दुस्तानियों की ओर आकृष्ट होगा। परिणामस्वरूप दोनों को बाहर निकाल दिया जाएगा। अतः वह मन को संतुलन में रखने का यत्न करने लगा। इस पर भी उसका मन चित्र देखने में न लग सका।

विश्राम-काल में दोनों ने एक-दूसरे को देखा। अब तक विनोद अपने मनोभावों पर नियन्त्रण कर चुका था और उसे इस दुबले-पतले हिन्दुस्तानी पर दया आने लगी थी, जो अंग्रेजी बोलने के साथ मानवता को भी भूल गया था। अतः उसने मुस्कराकर कहा, "मुझे विनोद कहते हैं। मैं उत्तर प्रदेश के बरेली जिले का रहने वाला हूँ। यहाँ मैडीकल-स्टूडैण्ट हूँ। बरेली के एक दुकानदार का लड़का हूँ।"

"आप यहाँ कदाचित नयें आए मालूम होते हैं ?" सोहन ने पूछा।

"परन्तु मैं समझता हूँ कि मैंने हिन्दुस्तानी भाई को पहचानने में भूल नहीं की। इस पर भी मुझे अपने हमवतन का परिचय नहीं मिला।"

अब सोहन को समझ आया कि एक ही बात में दो व्यंग किये गए थे उस पर। लन्दनवासियों का भी यह शिष्टाचार है कि जब कोई अपरिचित व्यक्ति किसी को पहले अपना परिचय देता है तो इसका अर्थ यही समझा जाता है कि उसका भी परिचय पाने का वह इच्छुक है और दूसरे व्यक्ति को सभ्यता के अनुसार ऐसा करना पड़ता है।

सोहन ने अपना परिचय दिया। अब चित्र पुनः आरम्भ हो गया। दोनों चित्र देखने लगे। सोहन मन-ही-मन अपने देशवासी के प्रति किये दुर्व्यवहार पर लज्जित था, यद्यपि विनोद ने उसको मूर्ख कहने की बात जतलाई नहीं थी। न ही अब वह बदले की भावना रखता था। अतः यह बात वहीं समाप्त हो गई।

संयोगवश दोनों ने एक ही वर्ष शिक्षा समाप्त की और इकट्ठे स्वदेश लौट रहे थे। आज भी विनोद द्वारा सिगरेट पेश करने की बात को टाल कर सोहन को सिनेमाघर की घटना स्मरण हो आई थी। अतः विनोद ने पुनः उससे वार्ता की तो वह भी उसकी हँसी-मजाक में सम्मिलित हो गया और उसके साथ कमरे में चला आया।

दो ○○○

एक सप्ताह पश्चात् जहाज बम्बई के तट पर आ लगा। दोनों मित्र, सम्बन्धियों तथा मित्रों के स्वागत के लिए एकत्रित लोगों में से अपने-अपने प्रियजनों को देखने लगे। एकाएक विनोद की दृष्टि अपनी बहन माला पर पड़ी। वह एक ओर खड़ी जहाज से उतरते लोगों को देख रही थीं।

विनोद ने सोहन से कहा, "मेरी बहन माला मुझे 'रिसीव' करने आई है। परन्तु पिताजी कहीं दिखाई नहीं देते।" इतना कह वह भीड़ को चीरता हुआ माला के पास आ गया।

"भैया! आप आ गए।" माला ने प्रसन्न होकर दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुए कहा।

"हाँ माला! अच्छी तो हो?" विनोद ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए पूछा, "पिताजी नहीं आये?"

इस प्रश्न से माला का मुख उदास हो गया। उसकी आँखें सजल हो आईं।

"क्या बात है, माला?"

"कुछ विशेष नहीं। सोचती हूँ, कितनी उत्सुकता थी आपके मन में पिताजी को यहाँ देखने की! किन्तु वे होटल में आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। पिताजी और मैं कल यहाँ पहुँचे थे। प्रातः वह शौच आदि से निवृत्त हुए तो अकस्मात् उनके पेट में दर्द उठा और वे पलंग पर गिर पड़े।"

"ओह! और अब कैसी तबीयत है उनकी?" विनोद ने माला की बात पूरी होने से पहले ही पूछ लिया।

"आशा है अब बिल्कुल ठीक होंगे। डॉक्टर दवाई दे गया है। मैं भी उनके पास रहना चाहती थी, परन्तु उन्होंने कहा कि मैं आपको जाकर ले आऊँ, अन्यथा आप कहीं यह समझकर कि आपको लेने कोई नहीं आया, आज बरेली के लिए प्रस्थान न कर जाएँ। उस अवस्था में हमारा यहाँ आना सर्वथा व्यर्थ हो जाता।"

"तुम यहाँ ठहरो। मैं सामान उठवाकर लाता हूँ।" इतना कहकर विनोद जहाज़ की ओर घूम पड़ा। परन्तु सामने सोहनलाल खड़ा था। उसने कहा, "चलो विनोद ! मैं सब सामान उठवा लाया हूँ।"

माला ने इस युवक के मुख पर देखा तो उसने नमस्ते कर दी। विनोद ने माला को सम्बोधन कर कहा, "यह मेरे मित्र सोहनलाल कपूर हैं।" माला का परिचय तो वह पहले दे चुका था। तीनों टैक्सी कर होटल पहुँचे।

सोहन चुपचाप अपने विचारों में लीन था। उसको लेने कोई नहीं आया था। उसकी कोई बहन अथवा भाई तो था नहीं और न ही माँ थी। इस पर भी उसको आशा थी कि उसके पिता स्वागत के लिए बम्बई अवश्य आयेंगे। वह पाँच वर्ष के बाद घर लौट रहा था। पाँच वर्ष पहले वह घर आया था। उस समय उसके पिता तीन दिन बम्बई में उसके जहाज़ के पहुँचने की प्रतीक्षा करते रहे थे। अतः सोहन अब अपने पिता के विषय में ही सोच रहा था।

इसके अतिरिक्त माला के अप्रतिम सौन्दर्य ने भी उसके मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा दी थी। उसकी आकृति सोहन को बहुत आकर्षक लगी थी। अपने पिता तथा भाई के स्नेह के कारण उसकी सजल आँखें तो भारतीय नारी के सौन्दर्य का विशेष रूप प्रस्तुत कर रही थीं।

होटल पहुँचकर विनोद ने देखा कि उसके पिता स्वस्थ हैं। उसने पिता के चरण स्पर्श करते हुए पूछा, "अब स्वास्थ्य कैसा है, पिताजी !"

"पेट में शूल उठा था। अब ठीक हूँ। तुम्हारे आने से शान्त हो गया है। तुम एक बड़े डॉक्टर बनकर आये हो। अब मुझे कुछ चिन्ता नहीं। तुम कुशल से तो हो न ?"

"आपको कैसा दीखता हूँ, पिताजी ?"

"मुझे तो पहले से तगड़े ही दीखते हो, परन्तु असल बात तो तुम्हारी माँ के देखने की है। उसे तो नित्य यही चिन्ता लगी रहती थी कि तुम्हें पेट भर भोजन भी मिलता होगा या नहीं। कौन खिलाता होगा समय पर !"

विनोद पिता के मुख से माँ के स्नेह-भरे उद्गार सुन द्रवित हो गया। उसकी आँखों में आँसू आ गए और भर्राई हुई आवाज में बोला, "माँ का अपना स्वास्थ्य तो ठीक है न ?"

"उसे तो आपकी चिन्ता ही रहती थी भैया ! वह अपने स्वास्थ्य का विचार कहाँ करती है ! आँखों से चाहे दीखता नहीं मगर फिर भी घर का सारा काम स्वयं करेगी।" माला ने कहा।

"तो तुम माँ की सहायता नहीं करती होगी ?"

"करना चाहती हूँ, भैया ! किन्तु माँ मुझे कुछ करने ही नहीं देती। जब भी मैं कोई काम करने लगती हूँ, वह कह देती है, 'तुम्हारी पढ़ाई का समय व्यर्थ जायेगा। तुम मन लगाकर पढ़ो। पढ़ाई नहीं करोगी तो ······।' माला कहते-कहते रुक गई। उसकी मोटी-मोटी आँखें भूमि की ओर झुक गयीं। इस पर भी विनोद समझ गया। उसने मुस्कराते हुए कहा, "कहा होगा, पढ़ाई नहीं करोगी तो अच्छा पति नहीं मिलेगा। यही न ?"

माला वहाँ से टल गई। वह शरमा गई थी।

सोहन एक छोटे से परिवार का परस्पर स्नेह देख मन-ही-मन विनोद के भाग्य की सराहना कर रहा था। उसने दस वर्ष लन्दन की जलवायु में बिना माँ, बाप, भाई, बहन के व्यतीत किये थे। इस अवधि में उसने उनकी कमी को अनुभव भी नहीं किया था। वह अँग्रेजी सभ्यता में आनन्द अनुभव करता था। उसे अपने पिता की याद भी प्रायः कम आया करती थी परन्तु आज वह अपने हृदय में कुछ परिवर्तन अनुभव कर रहा था। माला के समीप रहने की उसकी इच्छा प्रबल होती जाती थी।

इस पर भी एक विचार उसके मन में कचोट रहा था कि उसके पिता उसके स्वागत के लिए नहीं आए। वह धनी पिता का एकमात्र पुत्र होते हुए भी माला के मन पर ऐसा प्रभाव डाल नहीं सका, जिससे उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर सकता। उसे तो पूछने वाला कोई था ही नहीं।

विनोद के आग्रह पर सोहन भी उनके साथ उसी होटल में ही ठहर गया। दिन-भर सब इकट्ठे बम्बई की सैर करते रहे। अगले दिन उन्होंने दिल्ली की ओर प्रस्थान करना था। दिल्ली में विनोद के चाचा रहते थे। अतः सब लोग उनके पास एक दिन रुककर, वहाँ से बरेली जाने का विचार रखते थे। सोहन ने बम्बई पहुँचने का अपने पिता को तार दे दिया और दिल्ली पहुँचने की तिथि से भी उन्हें अवगत करा दिया।

माला पहली बार बम्बई आई थी, अतः विनोद उसको दिन-भर घुमाता रहा।

यद्यपि सोहन का माला से परिचय तो विनोद ने करा दिया था तो भी उसकी इच्छा थी कि माला उससे बातें करे और वह उसको अपने व्यक्तित्व से प्रभावित कर सके। वह इसी अवसर की खोज में दिन-भर घूमता रहा। अन्त में उसे यह अवसर मिल ही गया।

'हैंगिंग गार्डन्ज़' में वे घूम रहे थे। माला उस उद्यान के सौन्दर्य से मंत्रमुग्ध-सी बैंच पर बैठी थी। उसकी दृष्टि सामने गुलाब के फूलों पर पड़ी। उसके मुख से निकल गया, "कितना सुन्दर उद्यान है! और ये फूल भी कितने प्यारे हैं! बरेली में तो ऐसा कोई उद्यान ही नहीं है।"

इस समय माला के मुख पर मुस्कराहट थी। सोहन उसकी ओर देखने लगा। दोनों की दृष्टि मिली तो सोहन ने कहा, "मैं तोड़कर लाता हूँ आपके लिए फूल।" इतना कहकर सोहन बैंच से उठ खड़ा हुआ। उसको फूल तोड़ते समय माली से रार भी लेनी पड़ी क्योंकि फूल तोड़ने की आज्ञा नहीं थी। इस पर भी वह एक सुन्दर गुलाब का फूल लाने में सफल हो गया।

फूल माला को भेंट करते हुए वह मुस्कराकर बोला, "लीजिए।"

माला ने फूल हाथ में लेते हुए धन्यवाद कर दिया। विनोद दोनों के सम्बन्ध बढ़ाने के ढंग पर मुस्करा दिया। सोहन ने माला के सामने बैठते हुए कहा, "आपको फूलों से बहुत प्रेम है।"

"जी हाँ। मैं समझती हूँ मानव-प्रकृति ही ऐसी है। कौन ऐसे

सुन्दर फूलों को पसन्द नहीं करता होगा !"

सोहन ने गम्भीर मुद्रा धारण कर ली। वह विचार करने लगा—सच तो कहती है। फूल भी कई प्रकार के हैं इस संसार में। वह स्वयं भी एक सुन्दर तथा कोमल फूल है। कठोर तथा क्षुद्र हृदय भी उसकी ओर आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता।

इस औपचारिक वार्त्ता के पश्चात् सोहन माला से उसकी पढ़ाई तथा बरेली के विषय में बातचीत करता रहा। माला बी० ए० कर चुकी थी और आगे पढ़ने की अपेक्षा अपना जीवन समाज-सेवा में लगाना चाहती थी। बरेली के विषय में पूछताछ करने पर माला ने पूछ लिया, "आपने बरेली नहीं देखी ?"

"नहीं। मैं उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के अतिरिक्त कहीं भी नहीं जा पाया। वहां भी पिताजी के आग्रह पर उनके साथ त्रिवेणी-स्नान को गया था।"

"तो चलो हमारे साथ। मैं तुम्हें अपने घर ठहरने का निमन्त्रण देता हूँ।" विनोद ने कह दिया।

सोहन कुछ नहीं बोला। वह ऐसे औपचारिक निमन्त्रण की बात माला के मुख से सुनना चाहता था। यदि वह कहती तो वह सहर्ष स्वीकार कर लेता। इस पर भी इन्कार करने का उसमें साहस नहीं था। यदि विनोद बीच में न बोलता तो कदाचित माला उसे आमन्त्रित करती। उसने विचारकर उत्तर दिया, "पिताजी से पहले मिलना अत्यावश्यक है।"

"दिल्ली तो हम भी ठहरेंगे।"

"तब तो ठीक है। वहां पहुँच कर निर्णय कर लेंगे।"

इतना कहकर सोहन ने अपने उत्तर की प्रतिक्रिया जानने के लिए माला के मुख पर देखा। परन्तु माला के मुख पर कोई विशेष भाव अंकित न देख चुप कर रहा।

दिल्ली तक सोहन ने विनोद-परिवार के साथ एक ही डिब्बे में यात्रा की। उसको मार्ग में माला के विषय में बहुत-कुछ समझने का अवसर

मिला। जब रेलगाड़ी कल्याण स्टेशन पर रुकी तो एक युवती उस डिब्बे में सवार हुई। माला ने उसे देखा तो लपककर उसके पास आ गई और बोली, "हैलो गीता !"

"माला, तुम ?" गीता माला से लिपट पड़ी।

"तुम अकेली कहाँ घूम रही हो ?"

"मैं पूना से आ रही हूँ।"

"अकेली आई थी क्या ?"

"हाँ। वहाँ एक फ़िल्म कम्पनी में मेरा इन्टरव्यू था।"

"ओह ! ऐक्ट्रेस बनने की आकांक्षा थी।"

"भाग्य ने साथ नहीं दिया।"

"लेकिन तुम मुझे मिल गईं। मैं समझती हूँ कि भाग्य ने मेरा तो साथ दिया। कितने वर्षों के बाद मिली हो ?"

गीता तनिक विचार कर बोली, "चार वर्ष तो हो गए हैं। कहाँ हो तुम आजकल ?"

दोनों पुरानी सखियाँ एक ओर बैठ बातें करने लगीं। माला ने गीता को बताया, "भैया के इंगलैण्ड चले जाने के पश्चात् मैं भी पिताजी के पास बरेली लौट गई थी। बी०.ए० की परीक्षा मैंने वहाँ दी। अब भैया के स्वागत के लिए मैं पिताजी के साथ बम्बई आई थी।" इतना कह-कर माला ने विनोद और सोहन से गीता का परिचय करा दिया।

गीता ने माला से पूछा, "अब आगे क्या करने का इरादा है ?"

"पढ़ाई में तो कुछ लाभ प्रतीत नहीं होता। कुछ समाज-सेवा का कार्य करने में रुचि है।"

"नर्स बनने का विचार है क्या ?"

"नहीं। हमारे बरेली ज़िले में एक संस्था की स्थापना हुई है। उस संस्था के सदस्य ग्रामों में जाकर अनपढ़ स्त्रियों तथा बच्चों की सूची तैयार करते हैं। पश्चात् उनको शिक्षित करने का कार्यक्रम बनाया जाता है। उन्हें अच्छे नागरिक बनाने का यत्न किया जा रहा है।"

"यह तो बहुत ही नीरस कार्य है।"

"सेवा कार्य में अपने मनोरंजन का विचार नहीं किया जाता, उद्देश्य की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है।"

"इतना पढ़-लिखकर भी गँवारों में रहने से कौनसा उद्देश्य पूरा होने वाला है?"

"यही कि उन भोले भाले लोगों का कोई चतुर व्यक्ति शोषण न कर सके और वे भी शिक्षित होकर अपने अस्तित्व को भली-भाँति समझ सकें।"

"खूब। भगवान् उनका भला करे।" गीता खिलखिलाकर हँस पड़ी।

माला को यह व्यंग भला प्रतीत नहीं हुआ। जब गीता हँस चुकी तो उसने बात बदलने के लिये कहा, "पूना में असफल रहने पर तुम्हें बम्बई में प्रयास करना चाहिए था। वहाँ तो बहुत फ़िल्म कम्पनियाँ हैं। तुम जैसी ग्रैजुएट को कहीं-न-कहीं काम तो मिल ही जाता।"

गीता फिर मुस्करा दी। वह माला को सबके सम्मुख कैसे समझाती कि वहाँ शिक्षा नहीं देखी जाती। सौन्दर्य और यौवन के अतिरिक्त किसी निर्देशक अथवा फिल्म-निर्माता की कृपादृष्टि ही मुख्य बात है।

पूना में इण्टरव्यू के बाद उसे कोई रोल मिल जाने की पूर्ण आशा हो गई थी। निर्देशक उसके सौन्दर्य से अति प्रभावित हुआ था। भिन्न-भिन्न मुद्रा में उसके अनेक चित्र भी लिये गए थे। परन्तु अन्त में अचानक ही उसको 'रिजेक्ट' कर दिया गया। उसके स्थान पर आई एक मराठी लड़की, जिसका रंग गीता की अपेक्षा तनिक सांवला था, चुन ली गई थी। कारण यही था कि वह निर्माता की कृपा-पात्र नहीं बन सकी थी। इसके लिए जो मूल्य माँगा गया था, गीता चुका नहीं सकी थी। अतः गीता अब निराश दिल्ली लौट रही थी।

माला को अब गीता की संगत में आनन्द नहीं आ रहा था। उसे गीता में विशेष परिवर्तन का आभास हुआ। वह माला की दृष्टि में पहले वाली गीता न रही थी। उसने पुनः एक बार पूर्व-घनिष्ठता का

स्मरण कर वातावरण में रस लाने का यत्न करने के लिये कहा, "गीता ! हम चार वर्ष के पश्चात् भाग्यवश आज मिली हैं। इन चार वर्षों में क्या-कुछ हुआ, वह मैं जानने की इच्छुक हूँ।"

"इसलिए तो मेरी हँसी फूट पड़ी थी, माला ! तुमको सुनकर आश्चर्य होगा कि मैं बी० ए० पास नहीं कर सकी।

"अन्तिम वर्ष में पढ़ाई में मन ही नहीं लगा। सिनेमा-थिएटर में रुचि बहुत हो गई थी। जब परीक्षा-फल निकला और मैं फेल हो गई तो पढ़ाई छोड़ बैठी। पश्चात् घर की आर्थिक दशा भी बिगड़ती चली गई। मैं नौकरी की खोज करने लगी। आजकल दिल्ली की एक फर्म में नौकरी कर रही हूँ।

"फ़िल्म लाइन में जाने का भूत सवार हुआ। एक दिन विज्ञापन पढ़ा तो पत्र लिख दिया। मुझे पूना बुलाया गया और मैं अवकाश लेकर चली आई।"

"तुमने पुनः परीक्षा में बैठने का यत्न क्यों नहीं किया ?"

"मेरा मन पढ़ाई में नहीं लगता, माला ! माँ की लम्बी बीमारी ने पिताजी को दिवालिया बना दिया था। इस पर भी वह बच न सकी। उसकी मृत्यु पर पिताजी ने तो सन्तोष की साँस ली, किन्तु मुझको अपना भविष्य अन्धकारमय दिखाई देने लगा। अतएव मैंने सोचा कि फ़िल्म स्टार बन सकूँ तो इस दुनिया से दूर सुख-सागर में पहुँच सब-कुछ भूल जाऊँगी।"

"तो क्या तुम्हारे पिताजी ने स्वीकृति दे दी है ?"

"उनको मेरी चिन्ता ही नहीं है।"

"यह क्या कह रही हो ? कोई भी पिता अपनी सन्तान और वह भी लड़की के विषय में उदास नहीं रह सकता।"

"मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ, माला ! एक समय था जब पिताजी पुत्र-प्राप्ति के हेतु दूसरा विवाह करना चाहते थे। माँ जीवित रहतीं तो कदाचित उनको स्वीकृति दे देतीं। परन्तु माँ ने मरते समय पिताजी से

वचन ले लिया कि वे मेरे विवाह से पूर्व पुनर्विवाह नहीं करेंगे। अतः पिताजी को मेरे विवाह की चिन्ता लग गई। उन्होंने एक लड़का भी ढूँढ लिया था पर मैंने इन्कार कर दिया।"

"क्यों?" माला ने अनायास ही पूछ लिया।

"मैं जानती हूँ कि पिताजी मेरे विवाह के पश्चात् दूसरा विवाह कर लेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि मेरा गृहस्थ-जीवन दुखी हो जाएगा। ससुराल वाले मुझे उलाहने देंगे, मेरा जीवन दूभर कर देंगे। इसलिए मैंने पिताजी से स्पष्ट कह दिया कि वे चाहें तो विवाह कर सकते हैं। मैं विवाह कराने की इच्छा नहीं रखती।

"मुझे पूना से फ़िल्म-कम्पनी का बुलावा आया तो मैंने उनसे कह दिया कि मैं वापस दिल्ली नहीं आऊँगा। इस पर वे रोने लगे। परन्तु मैं जानती हूँ कि ये आँसू दिखाने के थे। यदि उन्हें मेरी आवश्यकता होती तो वे मुझे रोकते। न तो उन्होंने मुझे कुछ कहा और न ही कोई बात की। मुझे विश्वास है कि मेरे पूना जाने पर उनको प्रसन्नता ही हुई होगी। और कदाचित् वे दूसरा विवाह करने को तैयार हो गए हों।"

विनोद तथा सोहन दोनों सखियों का वार्तालाप सुन रहे थे। विनोद का पिता भगवतीप्रसाद सो गया था। विनोद गीता के विचार सुन विचार करने लगा था कि जिस सभ्यता की झलक उसे लन्दन में देखने को मिली, वही भारत में भी दृष्टिगोचर हो रही है। पिता और पुत्री का एक साथ न रह सकना अथवा उनका परस्पर झगड़ा होना, इस प्रकार की घटनाएँ लन्दन-जैसे नगर में प्रायः सुनी जाती थीं। किन्तु भारत में एक लड़की का अपने पिता के विषय में ऐसे उद्गार प्रकट करना, वह पहली बार अपने कानों से सुन रहा था। अतः उसका संयम टूट गया और हस्तक्षेप करते हुए बोला, "क्षमा करना, गीतादेवी! एक बात पूछूँ?"

"निःसन्देह! आप तो इंगलैण्ड घूमकर आये हैं। आपके साथ विचार-विनिमय होने से तो मेरे ज्ञान में वृद्धि ही होगी।"

"आप अपने विवाह की बात को अपने पिता के पुनर्विवाह से क्यों

जोड़ रही हैं ?"

"क्योंकि इन दोनों बातों का परस्पर सम्बन्ध है।"

"यह आपकी भूल भी तो हो सकती है। यदि आपके पिताजी पुन-र्विवाह की इच्छा रखते तो अब तक कर चुके होते। अपनी पुत्री के विवाह की चिन्ता होना प्रत्येक पिता के लिए अनिवार्य है और कर्तव्य भी। विवाह कराने के स्थान आपका फ़िल्म स्टार बनने के लिए घर छोड़ना, अपने पिताजी के हृदय पर वज्रपात करना है।"

"भाई साहब !" गीता ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "मैं तो समझती थी कि आप लन्दन की स्वच्छ वायु में रहकर आये हैं। अतएव आपकी बात में भावुकता के स्थान कोई युक्ति होगी।"

"मैं आपकी बात का अभिप्राय नहीं समझा। क्या यहाँ का जलवायु आपके शरीर और मन के लिए स्वच्छ नहीं है ? क्या यहाँ के पाश्चात्य वातावरण में आप प्रसन्न नहीं हैं ?" विनोद गीता का व्यंग सुन तिल-मिला उठा था। उत्तर दिये बिना नहीं रह सका।

गीता ने बात में कटुता आते देखी तो मुस्कराकर बोली, "मेरा यह तात्पर्य कदापि नहीं था। मेरे कहने का आशय तो यह था कि युवा पुत्री के होते हुए दूसरे विवाह की बात सोचना कहाँ की मानवता है ? आप मेरी बात समझने की अपेक्षा कहने लगे कि मैं पिता के हृदय पर वज्रपात कर रही हूँ ?"

"आपके पिता तो आपका विवाह करना चाहते थे। आपने यह कैसे अनुमान लगा लिया कि वे स्वयं भी विवाह कर लेंगे ?"

इस पर गीता ने कह दिया, "नहीं, आप नहीं जानते पिताजी को। वे मुझे अपने सिर पर बोझा मानते रहे हैं। वे जल्दी-से-जल्दी मुझसे छुटकारा पाना चाहते हैं।"

"हो सकता है, ऐसा ही हो। तो आप उनका यह बोझा हल्का कर दें न। विवाह कर लें और स्वतंत्र हो जायें। स्वयं प्रबन्ध कर लें या उनसे कह दें कि वे प्रबन्ध कर दें।"

"मैं अपनी इच्छा से विवाह करूँगी। वैसे स्वतंत्र तो मैं अब हो ही चुकी हूँ। स्वयं कमाती हूँ और अपना खर्चा वहन करती हूँ। अब दिल्ली जाकर पृथक् रहने का भी प्रबन्ध कर लूँगी।"

विनोद ने इस पर कुछ नहीं कहा। वह समझ गया कि वर्तमान शिक्षा का यह कुफल है और गीता ठोकर खाकर ही समझ सकती है। समझाने से कोई लाभ नहीं।

माला ने वार्त्तालाप का विषय बदलने के लिये कह दिया—"गीता! बताओ बरेली कब आ रही हो?"

"वहाँ क्या रखा है?"

"दिल्ली की चमक-दमक, सिनेमा इत्यादि अधिक न सही, पर मैं तो हूँ न।"

"जब तुम बुलाओगी तो आ जाऊँगी। इतने वर्षों के बाद मिली हो, तुम्हारा निमन्त्रण एकदम स्वीकार नहीं कर सकती।"

"तो मेरे साथ चली चलो।" माला ने हँसते हुए कहा।

"अब जल्दी ही और छुट्टी नहीं मिल सकेगी।"

तीन ०००

गाड़ी दिल्ली स्टेशन पर पहुँची। विनोद के चाचा उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर उपस्थित थे। सोहन को पूर्ण आशा थी कि उसके पिता अवश्य आयेंगे। किन्तु उसके स्वागत के लिए कोई नहीं आया था। सोहन को चिन्ता लग गई कि उसके पिता कहीं अस्वस्थ तो नहीं हैं। अतः वह विनोद से उसके चाचा का पता पूछ, शाम को मिलने का वचन दे, विदा हो गया।

गीता ने तो पहुँचने की सूचना अपने पिता को नहीं दी थी और न ही उसको आशा थी कि कोई उसे लेने आयेगा। माला ने उससे पूछा, 'गीता ! यदि तुम अपने घर जा रही हो तो ठीक है, नहीं तो हमारे साथ चलो। तुम्हारा अन्यत्र कहीं अकेले जाना ठीक नहीं।"

"तुमको अकेले भय लगता होगा। मैं तो पूना तक अकेली गई हूँ। यहाँ तो बीसियों स्थान हैं ठहरने के।"

"तो कहाँ जाओगी ?"

"मैंने अभी निश्चय नहीं किया ?"

अब विनोद ने कह दिया, "गीता बहन ! मैं समझता हूँ तुम्हें अपने घर ही जाना चाहिए। यदि तुम देखो कि तुम्हारे पिता का व्यवहार तुम्हारे प्रति ठीक नहीं, तभी तुम्हें कहीं अन्यत्र ठहरने का प्रबन्ध करना चाहिए।"

गीता कुछ असमंजस में पड़ गई। माला ने उसकी बाँह पकड़कर कहा, "ऐसा करो, तुम हमारे साथ चलो। घर पहुँच नहा-धोकर मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे घर चलूँगी और तुम्हारे पिताजी से बात करूँगी।" गीता मान गई और माला उसे अपने साथ ले गई।

माला के चाचा बनवारीलाल भारत सरकार के शिक्षा विभाग में उप-सचिव के पद पर नियुक्त थे। उनके प्रयत्न से ही विनोद उच्च डॉक्टरी शिक्षा के लिए लन्दन भेजा गया था। अतः विनोद आदि सब उनका आदर करते थे।

विनोद के पिता भगवतीप्रसाद यद्यपि बरेली में एक बहुत बड़े दुकान-दार थे, लाखों की आढ़त का काम होता था, तो भी बनवारीलाल की बात सबको मान्य होती थी। बनवारीलाल भगवतीप्रसाद से छोटा था, तो भी अधिक पढ़ा होने के कारण तथा सरकारी अफसर होने से सब उसको अधिक बुद्धिशील मानते थे। उसकी एक लड़की थी। सुदेश, एम० ए० राजनीति में करने के पश्चात् कम्युनिस्ट बन गई थी। उसने अपने विचारों के एक युवक से कोर्ट में विवाह कर लिया था। इससे बनवारीलाल को बहुत दुःख

हुआ था।

कभी-कभी सुदेश अपने पति विक्रमसिंह के साथ पिता की कुशलक्षम पूछने आ जाती थी। बनवारीलाल सरकारी अफ़सर होने से कम्युनिस्टों से किसी प्रकार का सम्पर्क रखने से डरता हो, केवल यही बात नहीं थी, प्रत्युत वह कम्युनिस्ट विचारधारा को भी नापसन्द करता था।

वह समझ नहीं सका कि सुदेश किस तरह कम्युनिस्ट बन गई ? कदाचित पिता का अधिक लाड-प्यार और उस पर किसी प्रकार की रोकटोक न होना ही सुदेश के पथ-भ्रष्ट होने में कारण बना था।

इस सब पारिवारिक परिवर्तन का परिणाम यह हुआ था कि बनवारीलाल विनोद में अधिक रुचि रखने लगा था।

जब सब स्टेशन से घर पहुँचे और स्नान आदि से निवृत हो कलेवा करने लगे तो सुदेश के विषय में बात चल पड़ी। बात विनोद ने ही आरम्भ की। उसने पूछा, "सुदेश आजकल कहाँ रहती है ?"

"यह तो मैं भी नहीं जानता। कभी-कभार दोनों यहां आ जाते हैं तो मुलाकात हो जाती है।"

विनोद तो यह उत्तर सुन चुप हो गया। परन्तु भगवतीप्रसाद ने कहा, "बनवारी ! तुम इतने बड़ अफ़सर हो। क्या उस विक्रमसिंह को मार्ग पर नहीं ला सके ? मेरा विचार है उसी ने सुरेश को पथ-भ्रष्ट किया है, अन्यथा वह ऐसी नहीं थी।"

"मैं अपने दफ़्तर में अफ़सर हूँ भैया ! भोली-भाली जनता को बरगला कर अथवा उन पर अपना प्रभाव जमाकर नेता कहलाने वालों से मैं रार कैसे ले सकता हूँ ! अब तो ठाकुर विक्रमसिंह अपने अलमोड़ा क्षेत्र से एम० पी० बन गया है।

"जब से वह एम० पी० बना है, सुदेश अपने पिता की कुशल-क्षेम अधिक पूछने लगी है। दोनों का यह कहना है कि अगले दस वर्षों में भारत में कम्युनिस्ट पार्टी शासन करेगी।"

"चाचाजी !" विनोद ने कहा, "इन सोशलिज़्म का नारा लगाने वालों

को यहाँ भारत की जनता ही वोट देती है। इंगलैण्ड में निर्वाचित हुए तो इनकी जमानतें भी ज़ब्त हो गयीं। इस प्रकार करारी हार हुई इस पार्टी को।"

"बरखुरदार! लोगों में मिथ्या प्रचार ही उसका कारण है। हमारे नेता समाजवाद का नारा लगाते रहते हैं और जनता इस मधुर शब्द के सम्मोहन में बिना यह जाने कि इसका अर्थ क्या है, फँसती जाती है। एक ओर तो समाजवाद-समाजवाद चलाती है तथा दूसरी ओर परिवार तथा सामाजिक प्रथाओं को तोड़ने में आनन्द अनुभव करती है।

"सुदेश ने भी स्वीकृति तो लेनी दूर, मुझसे राय लिये बिना ही कोर्ट में उससे विवाह किया है, मानो मेरा उससे कोई सम्बन्ध ही न हो।"

बनवारीलाल के इस कथन में उसके हृदय की पीड़ा छिपी थी। इसको सभी ने अनुभव किया। और कुछ देर के लिए उनमें मौन छा गया।

गीता विचार करने लगी थी कि विचित्र अवस्था है हमारे समाज की। कहीं तो पिता अपनी सन्तान के भविष्य का विचार न कर वृद्धावस्था में विवाह करना चाहता है और कहीं लड़की अपने पिता तक की चिन्ता न कर एक ऐसे व्यक्ति से विवाह कर बैठी है जो परिवार-प्रथा तथा सामाजिक परम्पराओं का विरोधी है। कम्युनिस्टों का राजनीतिक दृष्टि-कोण क्या था, इस पर उसने कभी विचार नहीं किया था। राजनीति में उसकी रुचि नहीं थी। वह तो बनवारीलाल की बातें सुन सुदेश की अपने साथ तुलना कर रही थी।

भगवतीप्रसाद अपने भाई के दुःख को भली-भाँति समझ रहा था, किन्तु वह कर ही क्या सकता था! उसने विषय को बदलते हुए कहा, "हम कल बरेली जाने का विचार रखते हैं। मेरी इच्छा है कि तुम भी कुछ दिन का अवकाश लेकर हमारे साथ चलो। अब जो कुछ हो गया है, हम बदल थोड़े सकते हैं। हमारी प्रार्थना है कि लड़की अपने गृहस्थ में प्रसन्न रहे। जो हवा चली है इस देश में, उसकी लपेट में कोई आ जाये तो आश्चर्य ही क्या है!"

"मैं तुम्हारी तरह स्वतन्त्र नहीं हूँ, भैया ! अन्यथा मैं भी यही कुछ कहता । सरकारी नौकरी तो अब नाममात्र की रह गई है ।

"जहाँ तक सुदेश और विक्रम के परस्पर सम्बन्ध का प्रश्न है, वे अच्छे ही दिखाई देते हैं ।"

माला के सम्मुख सुदेश की बात पहले कभी इस प्रकार नहीं हुई थी। उसकी धारणा यही थी कि सुदेश को चाचा ने विक्रम से विवाह की स्वीकृति स्वयं दी है । अब सुदेश के विषय में इस प्रकार बात खुलते देख उसने पूछ ही लिया, "चाचाजी ! जब आप जानते थे कि सुदेश दीदी गलती कर रही है तो आपने उसे रोका क्यों नहीं ?"

"देखो बेटी ! आज का वातावरण ही ऐसा है कि कोई समझाने से समझता नहीं । अब मैं विचार करता हूँ तो यही समझता हूँ कि हमारी स्कूल तथा कॉलेज की शिक्षा का भौतिकवादी आधार प्रत्येक को स्वार्थमय बना रहा है । हमारे घरों पर भी बच्चों के मन पर किसी प्रकार के संस्कार नहीं डाले जाते, जिससे वे इस भौतिकवादी शिक्षा का कुप्रभाव नष्ट कर सकें ।

"सुदेश की माँ धर्म-कर्म को मानती थी, परन्तु उसके देहान्त के पश्चात् तो एक प्रकार से सुदेश नियंत्रणविहीन हो गई थी । मैं भी उस पर लाड के कारण, उसको उच्छृंखल बनने से रोक नहीं सका ।

"एक दिन चाय पर उसके साथ एक युवक आया । उसका परिचय सुदेश ने मुझसे कराया । मुझे उसी समय भास हुआ कि यह युवक कम्यु-निस्ट है और उसके विचारों का रँग सुदेश पर चढ़ रहा है । मैं विचार करने लगा कि उसको कैसे समझाऊँ । एक डिप्टी सैक्रेटरी की पुत्री कम्युनिस्ट बन रही है, यह मेरे लिए चिन्ता का विषय था । परन्तु पहले इसके कि मैं कुछ अधिक बात करता, उन दोनों ने मेरे सम्मुख पति-पत्नी होने की घोषणा कर दी ।

"मैं यह निर्णय सुनकर चकित रह गया । उस रात सुदेश घर नहीं आई । अगले दिन मुझे पता चला कि दोनों ने कोर्ट में विवाह कर लिया है ।

"अब बताओ मेरे लिए उसको समझाने का कौनसा मार्ग रह गया था ?"

माला यह विवरण सुन गम्भीर हो गई। उसने विचार किया, कितनी भावुक निकली है सुदेश ! जल्दी में किया गया कोई भी निर्णय दुखदायी होता है। विवाह जैसा कार्य उसने बिना किसी से परामर्श किये सम्पन्न कर लिया। कितना कठोर मन होगा इस नारी का ! जिस पिता ने बाईस वर्ष तक उसका लाड-प्यार से पालन-पोषण किया, उसके उद्गारों को ठेस पहुँचा, वह एक अपरिचित तथा अपनी बिरादरी से बाहर के व्यक्ति के साथ, जिसको उसके पिता जानते तक नहीं थे, चल दी है।

क्या सुदेश विक्रम से प्रेम करती है ? यह प्रेम भी कैसा जिसकी कोई भी सराहना नहीं करता। पिता अपनी पुत्री और दामाद को बुलाता तक नहीं। किसी सम्बन्धी ने उनको बधाई तक नहीं दी। फिर भी सुदेश प्रसन्न है। माला को विस्मय होता था। वातावरण अब इतना गम्भीर बन गया था कि कोई भी पहले बोलने का साहस नहीं कर सका।

सब नाश्ता समाप्त कर चुके थे। अन्त में विनोद ने ही पूछ लिया, "तो चल रहे हैं न, चाचाजी !"

"देखो विनोद ! मैं यत्न कर रहा हूँ कि तुम्हारी नियुक्ति दिल्ली में ही हो जाये। मेरी बात मानो तो तुम भी अभी कुछ दिन यहीं ठहरो।"

विनोद मौन हो गया। इस पर भी वह देख रहा था कि बनवारीलाल का मुख कुछ उदास हो गया है। जब भी वह सुदेश के कारण दुखी होता था, विनोद के प्रति उसका स्नेह और भी बढ़ जाता था। बनवारीलाल की बात भगवतीप्रसाद को भी माननी पड़ी। उसने विनोद और माला से कह दिया, "तब हम सबको रुकना पड़ेगा। मैं अकेला बरेली गया तो तुम्हारी माँ को निराशा होगी। परन्तु वह विनोद से मिलने को उत्सुक होगी। मैं समझता हूँ कि उसको तार देकर दिल्ली बुला लेना चाहिए। हमें पता नहीं, यहाँ कितने दिन लग जायें।"

उक्त निर्णय के पश्चात् गीता और माला वहाँ से दूसरे कमरे में चली

गईं। गीता ने पूछा, "अब मेरे लिए क्या आज्ञा है?"

"तुम बताओ, क्या चाहती हो?"

"माला! मैं दुविधा में पड़ गई हूँ। जब तक मैं अकेली थी, अपने मन के अनुरूप चलती थी। समझ नहीं पा रही हूँ कि मैं क्या करूँ।"

"अच्छा तो अब तुम्हारे घर चलें।" माला ने बात बदल दी।

"मेरा मस्तिष्क कुण्ठित हो गया है। तुम जैसा उचित समझो।"

"तुम्हारे पिताजी इस समय कहाँ होंगे?"

"पहली नौकरी से तो वह अवकाश ग्रहण कर चुके हैं। आजकल अम्पायर होटल में 'कैशियर' हैं।"

"अच्छी बात। मैं उन्हें फोन करके आती हूँ।" इतना कह माला अपने चाचा के कमरे की ओर चल पड़ी।

"क्या कहोगी उनसे?"

"अभी आकर बताती हूँ।"

कुछ देर बाद माला ने आकर कहा, "चाचाजी होटल में नहीं हैं।" पश्चात् दोनों सखियाँ समाचार-पत्र देखने लगीं। आधे घण्टे तक कोई नहीं बोला। माला कभी समाचार-पत्र से दृष्टि हटा अपनी कलाई पर बँधी घड़ी को देख लेती थी। एकाएक वह उठी और गीता से बोली, "चलो, बाहर लॉन में ज़रा टहलें।"

दोनों बाहर आयीं तो एक टैक्सी कोठी के प्रवेश-द्वार पर आकर रुकी। एक प्रौढ़ावस्था का पुरुष उसमें से निकला और कोठी का फाटक खोल भीतर चला आया। माला ने देखा तो गीता का ध्यान भी उधर आकृष्ट करा दिया। गीता के मुख से अनायास ही निकला, "पिताजी।"

गीता के पिता का नाम रजनीकान्त था। उसने गीता के सिर पर हाथ फेर अपना स्नेह प्रकट किया और पूछा, "अच्छी तो हो, बेटी! तुमने कोई पत्र भी नहीं लिखा, अन्यथा मैं तुमको स्टेशन पर लेने आता।"

इतना कहते-कहते रजनीकान्त की आँखें भीग गईं। गीता और माला ने यह देखा। माला ने अनुभव किया कि गीता कितनी भ्रम में

पड़ी हुई है ! ऐसे स्नेहयुक्त व्यवहार वाले पिता को भी पहचान नहीं पाई। गीता का हृदय भी अपने पिता के अश्रु देख द्रवित हो गया। उसके मन पर बनवारीलाल की बातों का भारी प्रभाव पड़ा था और वह विचार कर रही थी कि कहीं सुदेश की भाँति वह भी भूल न कर रही हो।

माला ने उसे चुप देख कह दिया, "चाचाजी ! मैं गीता को साथ लेकर आना चाहती थी, परन्तु जब आपने कहा कि आप स्वयं ही आकर ले जा रहे हैं तो हम आपकी प्रतीक्षा करने लगे।"

"हाँ बेटी ! मुझे ऐसा लगता था कि गीता मुझसे रूठकर चली गई है। इसके जाने के पश्चात् मुझे बहुत दुःख हुआ। मुझे ऐसा लगा कि मैंने इसको जाने ही क्यों दिया। मेरी एक ही तो सन्तान है। मैं उसको भी प्रसन्न तथा सुखी नहीं रख सका।

"इसके जाने के बाद चार दिन तक मैं दफ्तर नहीं जा सका। फिर घर पर भी मैं बैठ न सकता था। सूना घर काटने को दौड़ता था। रह-रहकर मुझे गीता की याद आती थी और मैं रो उठता था। मैं तो अब आया हूँ यही निश्चय कर कि या तो गीता को साथ लेकर जाऊँगा, नहीं तो मेरा अब इस संसार में जीने का उद्देश्य ही क्या है ?"

रजनीकान्त के विह्वलता के अश्रु बह रहे थे। गीता का हृदय भी द्रवित हो चुका था। पिता की बात सुन उसके भी आँसू निकल आये और उसने रोते हुए कहा—"मुझे क्षमा कर दीजिए, पिताजी ! मैं घर चलूँगी। आपकी स्वीकृति के बिना अब कहीं नहीं जाऊँगी।"

माला गीता और उसके पिता को भीतर ले गई। रजनीकान्त का परिचय बनवारीलाल, भगवतीप्रसाद, विनोद इत्यादि सबसे हुआ। कुछ देर बैठकर रजनीकान्त अपनी बेटी के साथ प्रसन्न-वदन विदा हुआ। माला को भी गीता पूर्व वचनानुसार अपने साथ ले गई।

चार ○ ○ ○

सोहन स्टेशन से सीधा अपने घर गया। उसके पिता किशोरीलाल दिल्ली के जाने-माने रईस थे। स्थानीय कई बीमा कम्पनियों के डायरेक्टर होने के अतिरिक्त उन्होंने फरीदाबाद में साइकिलों का एक कारखाना भी खोल रखा था।

सोहन की माँ की मृत्यु उसके शैशव-काल में ही हो गई थी। किशोरीलाल उस समय एक हृष्ट-पुष्ट युवक था। अपनी एकमात्र सन्तान सोहन के पालन-पोषण की उसको अधिक चिन्ता थी। किशोरीलाल उसको उच्च शिक्षा देना चाहता था। अतएव सोहन को लन्दन भेजा गया और उसकी शिक्षा के लिए रुपया पानी की तरह बहाया जाने लगा। पाँच वर्ष के पश्चात सोहन एक बार अपने पिता से मिलने दिल्ली आया। उस समय किशोरी उसको बम्बई लेने आया था। सोहन के वियोग में किशोरीलाल किस प्रकार जीवन व्यतीत कर रहा था, सोहन इसका अनुमान तो न लगा सका, परन्तु वह अनुभव करता था कि उसका पिता उससे बहुत स्नेह करता है। सोहन की प्रत्येक इच्छा पूरी हो रही थी। उसका मानसिक विकास लन्दन के प्रगतिशील समाज में हो रहा था।

इस बार सोहन पढ़ाई समाप्त कर लौटा और किशोरीलाल सूचना मिलने पर भी उसके स्वागत के लिए नहीं गया। सोहन को दिल्ली स्टेशन पर पहुँचने पर विश्वास हो गया था कि उसका पिता अकस्मात बीमार पड़ गया होगा।

किन्तु ऐसी बात नहीं थी। इन पाँच वर्षों में किशोरीलाल में बहुत परिवर्तन आ गया था। इसका ज्ञान सोहन को अपने पिता की नई दिल्ली की कोठी पर पहुँचकर हुआ।

सोहन को स्मरण था कि पाँच वर्ष पूर्व जब वह दिल्ली आया था तो यह कोठी उसके पिता ने खरीदी थी। उस समय उस कोठी में उसके पिता का, एक विश्वस्त नौकर शिवनारायण के अतिरिक्त कोई नहीं था। अब

उसने कोठी में प्रवेश किया तो उसकी दृष्टि कोठी के उद्यान में टहलती हुई एक युवती पर पड़ी। सोहन उसको बितर-बितर देखता रह गया। क्षण-भर तो उसको अपनी स्मरण-शक्ति पर सन्देह हुआ कि वह गलत कोठी में आ गया है। उसने कोठी के बाहर लगे बोर्ड को पुनः ध्यान से पढ़ा। उस पर उसके पिता का नाम के० एल० कपूर लिखा था। अतः उसने अनुमान लगाया कि पिताजी ने कोठी का कुछ भाग किराये पर दिया होगा। वह सामान उठवाने के लिए नौकर को बुलाने कोठी के बरामदे में आ गया। अब युवती ने उसको लक्ष्य कर पूछा, "किससे मिलना है आपको ?"

"अपने नौकर शिवनारायण को खोज रहा हूँ।"

"कौन शिवनारायण ? आप रास्ता भूल गए हैं शायद।"

"क्या लाला किशोरीलाल कपूर का निवास-स्थान यह नहीं है ?" सोहन का प्रश्न था।

"आप उनसे मिलना चाहते हैं ?"

"जी हाँ ! वह मेरे पिता हैं। मैं लन्दन से पाँच वर्ष पश्चात् घर लौटा हूँ।"

"पिता ?" युवती मुस्कराई। पश्चात् अपने कटे हुए बाल कन्धों पर झटकती हुई बोली, "होंगे। बैठिए। इन्तज़ार कीजिए। वह तो एक बजे के करीब आयेंगे।"

अब सोहन का माथा ठनका। इस युवती का अवश्य पिताजी से कुछ सम्बन्ध है। वह विस्मय करता हुआ वहीं खड़ा रहा। युवती ने आवाज़ दी, "ओ रामू ! इधर आओ।"

कुछ क्षण में एक पन्द्रह-सोलह वर्ष का लड़का आया तो उस युवती ने उससे कहा, "साहब का सामान टैक्सी से उतारकर भीतर ले जाओ।"

सोहन का सामान आ गया। उसने टैक्सी वाले को पैसे दे दिये। अब पूर्व इसके कि वह कोठी में प्रवेश करे, वह उस युवती के विषय में जानकारी प्राप्त करना आवश्यक समझता था। उसने सिर से पाँव तक

उसको देखा। वह गौरवर्णीय अच्छे नख-शिख वाली सुन्दरी प्रतीत होती थी। सोहन ने अनायास ही पूछ लिया, "आप पिताजी की सैक्रेटरी हैं क्या ?"

"आप नहा-धोकर तैयार हो जाइए, सब-कुछ पता चल जाएगा। अगर हकीकत में आप कपूर साहब के फरज़न्द हैं, तो आपको यह मालूम होना चाहिए कि मैं आपकी माँ की कमी को पूरा करने की कोशिश कर रही हूँ। इसलिए मैं······"

अभी वह युवती, जिसका नाम मुमताज़ था, अपनी बात पूरी भी न कर पाई थी कि सोहन उसका भाव समझते हुए बोला, "यू ? माई मदर ? ओह ! तो आपका मतलब है कि आप मेरे पिता की मिस्ट्रेस (रखेल) हैं।"

इस पर उस स्त्री को क्रोध चढ़ आया। उसने सोहनलाल के मुख पर एक थप्पड़ मारते हुए कहा—"शट-अप यू स्वाईन ! ईडिअट (खामोश, सूअर, मूर्ख)।"

इतना कह वह स्त्री कोठी के भीतर चली गई और फोन का रिसीवर उठा नम्बर घुमाने लगी।

"कौन, कपूर साहब ! देखिए, मैं मुमताज़ बोल रही हूँ। यहाँ एक बदतमीज छोकरा आया है जो अपने को आपका बेटा बताता है······"

उत्तर मिला—"उसको बिठाओ। मैं अभी आता हूँ।"

मुमताज़ क्रोध में आगे कुछ कहना ही चाहती थी कि कपूर साहब ने फोन बन्द कर दिया। मुमताज़ भी वहीं पास रखी कुरसी पर हासना लगा बैठ गई।

सोहन अपना गाल सहलाता हुआ बाहर आँगन में खड़ा मुमताज़ के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था, परन्तु वह नहीं आई। सोहन आश्चर्य-चकित था कि अब क्या करे ? उसके क्रोध का पारावार नहीं था। इस पर भी वह भीतर जाने का साहस न कर सका। पिता का उसके स्वागत के लिए न आने का कारण उसकी समझ में आने लगा था। वह अब

अपने भविष्य पर विचार करने लगा। उसके मन में आया कि वह यहाँ से चला जाये। इस सुन्दरी के होते हुए उसकी अपने पिता से पट नहीं सकेगी। परन्तु साथ ही यह विचार कर कि एक बार उनसे मिलना अवश्य चाहिए, पूर्ण स्थिति का ज्ञान प्राप्त किये बिना कोई पग उठाना उचित नहीं, वह वहीं खड़ा रहा।

इस उधेड़-बुन में सोहन खोया हुआ था कि किशोरीलाल अपनी मोटर में वहाँ पहुँच गया।

सोहन ने पाँच वर्ष के पश्चात् अपने पिता को देखा। वह तो पहले से भी जवान दिखाई देता था। सोहन का उसके अस्वस्थ होने का भ्रम यहाँ निर्मूल हो गया। किशोरीलाल ने कार से बाहर निकलते ही मुस्कराकर कहा, "आ गए बरखुरदार! मैं तो समझता था कि तुम अकेले हिन्दुस्तान नहीं लौटोगे। किसी गौरवर्णीय सुन्दरी की बाँह में बाँह डाले हुए मेरे सामने आओगे।"

सोहन, जो पिता को प्रणाम करने के लिए आगे बढ़ा था, उक्त प्रश्न से विस्मय में पिता का मुख देखने लगा। कुछ क्षण में अपने मानसिक सन्तुलन को स्थिर कर वह भी मुस्कराकर बोला, "मुझे आपसे ऐसी आशा नहीं थी, डैडी!"

"तुमने भी तो मेरी आशा पर पानी फेर दिया है। सच पूछो तो इसीलिए मैं बम्बई तुम्हारे स्वागत के लिए नहीं गया क्योंकि तुम अकेले आ रहे थे।"

"परन्तु आप तो अब अकेले नहीं रहे। इस पर भी मेरा खूब स्वागत हुआ।"

"आपका बेटा इंगलैंड से तहज़ीब सीखकर आया है। इसीलिए वह अपना इस्तकबाल बैंड बाजे के साथ होने की उम्मीद लगाये हुए था।" मुमताज़, जो पिता-पुत्र की वार्ता सुन बाहर आ गई थी, व्यंग करती हुई बोली।

इससे तो सोहन का रहा-सहा संयम भी टूट गया। उसने कहा,

"डैडी ! क्या मैं समझूँ कि इस घर में मेरे लिए अब कोई स्थान नहीं रहा ?"

"देखो सोहन ! जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं कह सकता हूँ कि तुम्हारे लिए मेरे हृदय तथा घर के द्वार सदा खुले रहे हैं। और तब तक खुले रहेंगे जब तक तुम स्वयं कोई ऐसा व्यवहार नहीं करते, जो मुझे विपरीत सोचने पर विवश कर दे।

"यदि ऐसा होता तो मैं तुम्हें रुपया भेजना भी बन्द कर देता। मुमताज को मेरे पास आये हुए तो दो वर्ष हो गए हैं।"

सोहन को इस स्पष्ट उत्तर से कुछ सांत्वना मिली। इस पर भी उसने साहस बटोरकर पूछा, "तो मुझे और किसी से पूछना होगा ? क्या मैं समझूँ कि मेरे गाल पर जोर से थप्पड़ लगाने वाली मेरी माँ है ?"

इस प्रश्न पर किशोरीलाल खिलखिलाकर हँस पड़ा। हँसते हुए उसने मुमताज के मुख पर देखा तो वह भी मुस्करा दी। सोहन के प्रश्न का ठीक उत्तर देना उसके लिए सरल नहीं था।

मुमताज से किशोरीलाल ने विवाह नहीं किया था। दो वर्ष पूर्व एक घटनावश दोनों की भेंट बनारस में हुई थी। किशोरीलाल अपने व्याव-सायिक कार्य से लखनऊ गया तो वहाँ से उसका विचार एक दिन के लिए बनारस आने का हो गया। वहाँ गङ्गा में नौका-विहार करते हुए उसकी भेंट मुमताज से हो गई। मुमताज एक पृथक् नौका में अपने नौकर के साथ सैर कर रही थी। साथ एक छोटा-सा बच्चा भी था।

दोनों किश्तियाँ गङ्गा के पार किनारे पर साथ-साथ जा लगीं। किशोरीलाल ने अपने नौकर से कहा, "चाय बनाओ।" उसके नौकर शिव नारायण ने रेत पर चटाई बिछाई और स्टोव जलाकर चाय बनाने लगा।

मुमताज ने भी उसके समीप डेरा जमाया। दोनों की दृष्टि टकराई और मुमताज मुस्कराती हुई अमरूद खाने लगी। नौकर बच्चे के साथ खेलने लगा। कुछ क्षण पश्चात् एकाएक बच्चा रोने लगा। मुमताज के

कराने पर भी चुप न हुआ। नौकर ने कहा, "बेगम साहिबा ! यह ...ा है।"

मुमताज़ बहुत व्याकुल हुई। अब उसे दूध कहाँ से पिलाये ? वह खीझकर बोली, "अभी तो इसे पेट-भर दूध दिया है।"

"कोई बात नहीं। बच्चे के लिए दूध मिल जायेगा।" यह आवाज़ किशोरीलाल की थी।

"शुक्रिया।" मुमताज़ के मुख से निकल गया। किशोरीलाल ने अपने नौकर को संकेत किया। उसने हॉरलिक्स की बोतल निकाली और एक प्याला दूध बना कर मुमताज़ को दे दिया। बच्चा शान्त हुआ तो किशोरीलाल ने पूछा, "आप यहाँ की रहने वाली हैं क्या ?"

"वैसे तो मैं लखनऊ में रहती हूँ, लेकिन दो-चार दिन से यहाँ…।" कहते हुए मुमताज़ की आँखें डबडबा आईं।

"क्या बात है ? आपको कोई सदमा पहुँचा मालूम होता है ?"

"जी हाँ। मैं लखनऊ के एक रईस नवाब नज़ीर हुसैन की तलाक़-याफ़्ता बदनसीब बेगम मुमताज़ हूँ। यहाँ मेरी बहन रहती है। उससे मिलने आई थी। ग़म ग़लत करने के लिए इधर घूमने चली आई।"

"ओह ! भगवान् ने आपके साथ बहुत बेइन्साफ़ी की है।" इतना कहते हुए किशोरीलाल ने सौ रुपये का एक नोट निकालकर बच्चे के हाथ में थमा दिया। फूल-सम बालक उसकी ओर देखने लगा। मुमताज़ ने कहा, "आप यह क्यों तकल्लुफ कर रहे हैं ?"

"तक़ल्लुफ नहीं, बेग़म; इस मासूम बच्चे को दे रहा हूँ। औलाद होते हुए भी उसने तुम्हें तलाक दे दिया।"

"यह बच्चा तो मेरी बहिन का है।"

"अब समझा। आप लखनऊ में कहाँ रहती हैं ?"

"कोई घर हो तो बताऊँ।"

"मुझे आपसे दिली हमदर्दी है।" किशोरीलाल का कहना था।

मुमताज़ गम्भीर मुद्रा धारण किये बैठी रही। किशोरीलाल ने देखा

कि वह एक अनुपम सुन्दरी है। दोनों ने इकट्ठी चाय पी। विदा होते समय किशोरीलाल ने सौ रुपये का एक और नोट मुमताज़ को देते हुए कहा, "इस वक्त यह रख लो। मैं दिल्ली का रईस हूँ। किसी किस्म की मदद की ज़रूरत हो तो इस पते पर चली आना।"

मुमताज ने पते वाला कार्ड ले लिया और किशोरीलाल की उदारता का धन्यवाद कर चली गई।

किशोरीलाल वहाँ से कलकत्ते चला गया। दो सप्ताह पश्चात् दिल्ली लौटा तो मुमताज़ को अपनी कोठी में बैठे पाया। मुमताज़ ने झुककर आदाब-अर्ज करते हुए कहा, "दिल्ली में अपनी खालाजान से मिलने आई थी। सोचा आपकी खैरियत पूछती चलूं।"

"बहुत मेहरबानी है तुम्हारी। मैं तो आज ही लौट रहा हूँ।"

"आप इतनी बड़ी कोठी में अकेले रहते हैं?"

"हाँ। मगर नवाब साहब की कोठी से तो छोटी ही होगी।"

"अजी साहब! आप तो यूँही शर्मिन्दा करते हैं।"

इस औपचारिक वार्ता के पश्चात् दोनों में आँखों-आँखों में कुछ बातें हुई और मुमताज स्थायी रूप से उस कोठी में ही रह गई। किशोरीलाल उसको पाँच सौ रुपये प्रति मास जेब-खर्च के लिए देने लगा।

किशोरीलाल के विश्वस्त तथा पुराने नौकर शिवनारायण को जब यह पता चला कि उसके मालिक ने बनारस वाली तलाकयाफ़्ता मुसलमान स्त्री को घर में रख लिया है तो उसने नौकरी छोड़ने का निश्चय कर लिया। किशोरीलाल ने कारण पूछा तो उसने कहा, "मालिक! बहुत दिन तक आपका दिया अन्न खाया। अब इस नई मालकिन से मुझ-जैसे गँवार की पट नहीं सकेगी। इसलिए अपने बाल-बच्चों के पास जाऊँगा।"

"अपने बीवी-बच्चों को यहाँ ले आओ न।"

"यह नहीं हो सकता। अब मुझे छुट्टी दे दें, मालिक! तो ठीक है।"

शिवनारायण चला गया तो मुमताज़ ने रामू नाम के एक छोकरे को नौकर रख लिया। किशोरीलाल लंच तो प्रायः अपने कार्यालय में ही लेता

था। केवल रात का भोजन घर पर करता था। मुमताज उसकी सेवा के लिए सदैव उपस्थित रहती थी। वह दिन-भर कोठी में अकेली होती थी, तो भी किशोरीलाल ने उसको एक रखैल से अधिक अधिकार नहीं दिये थे।

मुमताज इस जीवन से सन्तुष्ट थी। पाँच सौ रुपये में से वह अपने वस्त्रों तथा शराब का खर्च निकालती थी। इस पर भी कुछ बचा लेती थी। शेष उसे वैसे मिल ही जाता था। एक बात का वह विशेष ध्यान रखती थी कि उसको-गर्भ न ठहरने पाए, क्योंकि उसका विचार था कि उस अवस्था में कदाचित् वह कोठी में नहीं रह सकेगी।

अब किशोरीलाल सोहन से यह कहने का साहस न कर सका कि मुमताज उसकी विवाहिता पत्नी है और उसको उसके साथ माँ का-सा व्यवहार रखना पड़ेगा। अतः वह चुप कर रहा, किन्तु मुमताज ने इसको सुअवसर जान कह दिया, "अगर सोहन इस कोठी में रहेगा तो उसको एक फ़रमाबरदार बेटे की तरह मेरा कहना मानना पड़ेगा।"

सोहन अपने पिता के स्थान उस सुन्दरी के मुख से यह बात सुन भौंचक्का रह गया। वह विचार करने लगा कि यह चुड़ैल तो उसकी सब आशाओं पर पानी फेर सकती है। वह धन के बिना कुछ भी नहीं कर सकता। जो कुछ वह इंगलैण्ड से पढ़कर आया है, उसका फल तभी हो सकता है जब पिता उसकी आर्थिक सहायता तब तक करें, जब तक वह अपने पाँव पर खड़ा नहीं हो जाता। पिता के व्यवहार से तो वह यह समझा था कि वह अब भी उससे पहले-जैसा स्नेह रखते हैं। इस पर भी मुमताज उसके भविष्य-निर्माण में बाधा डाल सकती है। उसने पिता के मुख पर देखा। उसे गम्भीर देखकर उसकी दृष्टि मुमताज के मुख पर जा टिकी। उसकी आँखों में अहंकार और शरारत थी। अनायास देखने मात्र से ही वह कामांध स्त्री प्रतीत होती थी। उसने तनिक मनन करके कहा, "यदि डैडी आपका, एक निष्ठावान् पत्नी की तरह आदर करेंगे तो मैं आपको माँ समझने में अपना अहोभाग्य समझूँगा। आशा है आप परिवार

में जिस वस्तु का अभाव है, उसको शीघ्र पूर्ण करने में सफल हो जाएँगी।"

"किस चीज़ की कमी है तुम्हारे परिवार में ?" मुमताज़ ने पूछा।

"मुझे एक बहिन चाहिए।"

इस उत्तर ने तो किशोरीलाल तथा मुमताज़ दोनों को चक्कर में डाल दिया। वह उक्त वार्तालाप को सुन जहाँ विस्मित हुआ वहाँ मन-ही-मन चिन्तित तथा लज्जित भी। इस विषय पर विवाद करना उसके लिए लाभदायक नहीं था। अतः बात को टालते हुए उसने कहा, "आज आये हो बरखुरदार! क्यों इतनी चिन्ता कर रहे हो ? तुम्हें इन बातों से ऊपर होना चाहिए। एक वैज्ञानिक हो। तुम विज्ञान के आधार पर कुछ करके दिखाओ।

"चलो नहा-धो लो। पश्चात् इकट्ठे भोजन करेंगे। जैसा तुम चाहोगे, हो जाएगा।"

किशोरीलाल सोहन का हाथ पकड़ उसे भीतर ले गया। मुमताज़ के माथे पर बल पड़ गए। वह मन से सोहन के सुझाव का स्वागत करती थी। वह चाहती थी कि एक सन्तान उसके गर्भ से हो जाय और किशोरीलाल भी उसको अपने पास रखने से राज़ी हो तो वह एक प्रतिष्ठित स्त्री की तरह जीवन-भर यहाँ पड़ी रहेगी। परन्तु वह तो दो वर्ष से भोजन के अतिरिक्त पाँच सौ रुपये मासिक की रखैल ही बन सकी थी। शेष वह किशोरीलाल के बारे में न कुछ जानती थी और न ही एक पत्नी के अधिकार उसे प्राप्त थे। न ही किसी अन्य विषय पर उससे विचार-विनिमय किया जाता था। केवल भोग-विलास ही उसके जीवन का ध्येय बन गया था।

सोहन ने स्नान किया। अपने पिता के साथ भोजन किया और पश्चात् किशोरीलाल उसको अपने कार्यालय में ले गया। अगले दिन वह पिता की मोटर ले विनोद से मिलने चला गया। मार्ग में वह विचार करता जाता था कि माला और विनोद से अपने पिता के बारे में क्या कहेगा। उन्हें

कुछ तो कारण बताना ही पड़ेगा कि वह क्यों उसके स्वागत के लिए स्टेशन पर नहीं आये थे ?

पाँच ○○○

सोहन बनवारीलाल की कोठी पर पहुँचा तो विनोद वहाँ नहीं था। उसका स्वागत माला ने किया।

"विनोद कहाँ गया है ?" सोहन ने माला से पूछा।

"भैया चाचाजी के साथ दफ्तर गए हैं।"

"आप लोग बरेली कब जा रहे हैं ?"

"अभी कुछ निश्चित नहीं हुआ। चाचाजी भैया की दिल्ली में ही नियुक्ति का यत्न कर रहे हैं। कुछ परिणाम निकलने पर ही जाने का कार्य-क्रम बनेगा।"

इतनी औपचारिक बात ही हुई। पश्चात् माला ने चाय मँगवाई और दोनों चाय पीने लगे। सोहन चाय का घूँट लेते समय माला के मुख पर देख लेता था। आज उसको अवसर मिला था माला से बातें करने का और बात कुछ बन नहीं रही थी। कुछ-क्षण चुप रहने के बाद उसने पूछा, "यदि विनोद की नियुक्ति यहाँ हो गई तो क्या आप भी यहाँ रहेंगी ?"

"ऐसी आशा कम है। मेरा भिन्न कार्यक्रम है। पिताजी को तो बरेली में रहना ही है। उनका वहाँ कारोबार है।"

"तो आपका निश्चय है ग्राम सुधार करने का ?"

"इच्छा तो प्रबल है।"

"मगर मेरी एक भिन्न योजना है। मैं समझता हूँ जब तक हम 'राइंटी-

फिकली साउंड (विज्ञान में उन्नत) नहीं होंगे, हमारा देश प्रगति नहीं कर सकता। मैं शीघ्र ही अनुसंधान का कार्य आरम्भ करना चाहता हूँ। मेरी इच्छा है आप मुझे सहयोग दें। तत्पश्चात् आप ग्रामवासियों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी लाभ पहुँचा सकेंगी।"

माला मुस्करा दी। वह जब से सोहन के सम्पर्क में आई थी, अनुभव कर रही थी कि वह बातें कुछ बे-सिर-पैर की करता है। उसे ऐसे लगता था, जैसे वह केवल उससे बात करने के लिए कुछ कहता हो। उसने मुस्कराते हुए सोहन के मुख पर देखा तो वह चुप हो गया। इससे माला ने अनुमान लगाया कि वह उसमें रुचि लेने लगा है। अपनी योजना से उसके मन पर प्रभाव बिठाना चाहता है। उत्तर देने के स्थान केवल मुस्करा देना उसे दुःखी कर रहा है। इसलिए उसने कह दिया, "मैं आपकी तरह विज्ञान पढ़ी होती तो अवश्य सहयोग देती। मैंने फिलौसफ़ी पढ़ी है। इस पर भी मैं आपका भावार्थ नहीं समझी। मैं आपके साथ काम करने के बाद ग्रामवासियों का अधिक भला कैसे कर सकूँगी?"

"देखिए, मिस माला! एक वैज्ञानिक, दूसरा फिलौसफ़र, दोनों मस्तिष्क मिलकर देश की कोटिकोटि जनता का बहुत हित सोच सकते हैं।"

"मगर केवल सोचने से काम नहीं चलेगा। करने से जो फल निकलेगा तभी हम कुछ कह सकते हैं।

"हमारे बरेली में निर्वाचन हुए तो मैं कांग्रेस के लिए प्रचार करती रही। कांग्रेसी सदस्यों तथा नेताओं ने भोले-भाले ग्रामवासियों को जो सब्ज़ बाग़ दिखाये अथवा उनके कल्याण हेतु वायदे किये, उन्हें सुनने मात्र से हमारे सिर गर्व से ऊँचे हो जाते थे। परन्तु जब वे विजयी हो गए, तो उन्हें समय ही नहीं मिलता कि ग्रामों में जाकर देखें तो सही कि उन लोगों का किस प्रकार शोषण हो रहा है।

"देश की कम्युनिस्ट पार्टी कम्यूनिज़म से ही देश का हित समझती है। वह श्रमिकों की पार्टी है। किन्तु उसकी वास्तविक अवस्था कितनी सुधरी है, यह तो प्रत्येक बुद्धिशील व्यक्ति जानता है।"

"तो क्या आपको मेरे कथन पर सन्देह है ?" सोहन ने पूछा ।

"यही प्रश्न मैं आपसे पूछना चाहती थी । क्या आपको अपने कथन पर विश्वास है कि सायंटिफिकली प्रगति होने से समस्त देश की जनता सुख, शान्ति से रह सकेगी ?"

"क्यों नहीं ? ऐसा मैंने योरुप के देशों में देखा है, विशेषकर इंगलैण्ड में ।"

"इंगलैण्ड में आपने यह भी देखा होगा कि प्रत्येक व्यक्ति कितना शिक्षित तथा स्वतन्त्र है । कितने समाचार-पत्र वहाँ से निकलते हैं और ग्राहक संख्या कितनी है । भारत की तुलना में वह देश कितना छोटा है ! जन-संख्या कितनी कम है, इस पर भी समाचार-पत्र पढ़ने वाले कितने अधिक हैं !"

"आपको ये सब बातें किसने बताई हैं ?"

"क्या आप समझते हैं, केवल इंगलैण्ड जाने से ही वहाँ के बारे में जाना जा सकता है ? आपने ही इंगलैण्ड का उदाहरण दिया था । क्या वहाँ की जनता की सम्पन्नता का आधार केवलमात्र वैज्ञानिक उन्नति है या और भी कुछ है !

"जहाँ तक मुझे विदित है ब्रिटेन का कोई लिखित विधान नहीं है । सब-कुछ परम्पराओं से चलता है । ये परम्पराएँ इतनी प्रबल हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उस पर दृढ़ रहने का प्रयास करता है । किन्तु इसके विपरीत भारत का विधान कितना बड़ा पोथा है ! क्या फिर भी हम लोग उसके अनुरूप चलने का यत्न करते हैं ?

"पहले जनता को सही अर्थों में शिक्षित करने की आवश्यकता है । दास प्रवृत्ति के कारण जो विकार हमारे देशवासियों में पनप रहे हैं, शिक्षा से दूर होंगे, 'साइंटिफ़िकली साउंड' होने से नहीं । इसके पश्चात् हम विज्ञान का वास्तविक लाभ उठा सकेंगे । वैज्ञानिक उन्नति हो भी गई और मन विकार-रहित न हुए, तो क्या देश में शान्ति रह सकेगी ?"

सोहन विचार करने लगा, यह लड़की अपने जीवन में करना क्या चाहती

है ? एक बात वह माला की युक्तियों से समझ पाया था कि उसका मानसिक विकास उससे भिन्न हुआ है ।

माला का कथन बहुत सीमा तक ठीक प्रतीत होता था । एक उदाहरण तो वह अपने ही घर में देख आया था । उसके पिता ने व्यापारिक दृष्टि से कितनी उन्नति कर ली थी ! आर्थिक लाभ भी बहुत हुआ था । वह बहुत बड़ा रईस था । परन्तु उसकी माँ की पूर्ति एक ऐसी स्त्री कर रही थी जिसको वह अपनी माँ के पाँव की धूल के समान भी नहीं मान सकता था । वह उसकी जाति की भी नहीं थी । फिर भी उसका उसके पिता पर कुछ अधिपत्य था । उसके पिता मुमताज के कहने पर उत्तर नहीं दे सके थे । वह अपने बेटे अथवा मुमताज दोनों में किसी को भी रुष्ट नहीं करना चाहते थे । स्पष्टता का व्यवहार एक इतना बड़ा रईस भी अपनाने से डरता था ।

यही बात वह मन में टटोलने पर अपने विषय में अनुभव करने लगा था । वह माला को स्वयं से कम शिक्षित लड़की समझ अपनी वैज्ञानिक शिक्षा का बखान कर उस पर प्रभाव डाल उससे घनिष्ठता बढ़ाने का यत्न करने लगा था । परन्तु स्पष्ट कह नहीं सका कि वह उसमें रुचि रखता है और उसके समीप रहने का इच्छुक है । उसे अपने मन के भाव माला को स्पष्ट बताने का साहस नहीं हुआ । उसने पूछा, "तो क्या आप समझती हैं कि आपकी योजनानुसार ग्राम-सुधार हो सकेगा ?"

"मेरा ऐसा विश्वास है । शेष परिस्थितियों पर निर्भर है । मैं समझती हूँ जनता का पूर्णरूपेण शिक्षित न होना ही उनके शोषित होने का कारण है ।

"नेताओं के पास सम्मोहिनी वाग्शक्ति होती है । यह एक तथ्य है । जो लोग उनके सम्मोहन में नहीं आते और अपनी बुद्धि के अनुरूप अग्रसर होते हैं, वे ही वास्तव में शिक्षित हैं ।"

"आपका अभिप्राय है कि केवल अनपढ़ व्यक्तियों को मूर्ख बनाया जा सकता है ?"

"निस्सन्देह ।"

सोहन हँस पड़ा। वह माला से सहमत नहीं था। उसने कहा, "आपने अभी बताया कि इंगलैंड की जनता शिक्षित है। किन्तु मैंने वहाँ भी लोगों को अन्य व्यक्तियों द्वारा मूर्ख बनते देखा है।"

"आपका कहना ठीक है। साधु तथा असाधु और चतुर व्यक्ति तो प्रत्येक जाति तथा समाज में हो सकते हैं। एक शिक्षित व्यक्ति का शोषण हो जाना अथवा मूर्ख बनाया जाना उसके सरल-चित्त होने के कारण है। अज्ञानता को दूर करना तो प्रत्येक समाज में अनिवार्य है। शिक्षा के यह अर्थ नहीं कि मैं चाहती हूँ कि ग्रामवासियों को शिक्षित कर कुटिल बना दिया जाये।

"सरलता और साधु-प्रवृत्ति तो एक गुण है। शिक्षा से अज्ञानता-रूपी अँधेरे को दूर करना है। मैं यही करना चाहती हूँ।"

सोहन माला के बात करने के ढंग से अति प्रभावित हुआ। वह ज्यूँ-ज्यूँ उससे बातें करता जाता था, उसकी आकांक्षा प्रबल होती जाती थी कि वह उसकी जीवन-संगिनी बने। वह इस मधुर स्वप्न में लीन माला के सुन्दर लोचनों की छवि देखता हुआ बहुत देर तक विनोद की प्रतीक्षा में वहाँ बैठा रहा।

माला सोहन के उक्त व्यवहार से समझ रही थी कि वह उसमें विशेष रुचि रखता है। जब कमरे में सर्वथा निस्तब्धता छा गई और सोहन चुप-चाप सिगरेट पीता हुआ अपने विचारों में तल्लीन हो गया तो माला ने कनखियों से उसके मुख पर देखा। वह किसी चिन्ता में डूबा प्रतीत होता था। उसके मुख पर बच्चों की-सी सरलता थी। माला को उस पर दया आई। वह जिस दिन से उसके सम्पर्क में आई थी, उससे, अपने भाई के घनिष्ठ मित्र होने के नाते, अच्छा व्यवहार करती रही थी। इस पर भी वह मन को टटोलने पर उसके प्रति प्रेममय कोमल उद्गार अनुभव नहीं करती थी। वह केवल इतना समझ पाई थी कि इंगलैण्ड में शिक्षा पाने पर भी वह एक अनाड़ी है। उसे संसार का ज्ञान बहुत कम है। उसकी बातों का आधार युक्ति नहीं प्रत्युत भावुकता है। वह भावुक व्यक्ति को

प्यार नहीं कर सकती थी। नारी होते हुए भी वह अपने मन में संकल्प कर चुकी थी कि उसका जीवन-साथी समय नष्ट करने वाला, भावुक व्यक्ति नहीं होना चाहिए।

वह उसके मुख पर देखते हुए यह अनुमान लगा रही थी कि वह किसी गहरी सोच में पड़ा है। उसने घर आये मेहमान के साथ इस प्रकार खामोशी का व्यवहार अपनाना भी उचित न समझ पूछ लिया, "कहाँ रहते हैं आप ?"

"नई दिल्ली बाराखम्भा रोड पर।"

"आपकी कोई बहन भी है ?"

"नहीं। केवल पिताजी हैं। माँ भी नहीं है।" सोहन कुछ उदास हो कर बोला।

"तब तो आप बहुत अभागे हैं ?"

"कैसे ?"

"बहन-भाई तथा माँ, इनका अभाव तो आपको है ही। क्या यह आपको अखरता नहीं ?"

"अखरता तो है, परन्तु मेरे भाग्यहीन होने का इससे क्या सम्बन्ध है ? आप मुझे अभागा कह सकती हैं, किन्तु कई ऐसे भी हैं जो मुझको सौभाग्यशाली कहते हैं क्योंकि मैं अपने बाप का इकलौता बेटा हूँ और वे बहुत बड़े रईस हैं।"

"लेकिन आप स्वयं क्या समझते हैं ?" माला ने मुस्कराते हुए पूछा।

"कुछ भी नहीं।"

"ठीक है। आप इतनी बड़ी सम्पत्ति के केवलमात्र उत्तराधिकारी हैं; परन्तु वस्तु का उपभोग जब कोई स्वजनों के साथ मिलकर करता है तो वह कितना भाग्यशाली होता है !"

सोहनलाल माला की इस मीमांसा पर गम्भीर हो गया। वास्तव में वह अभी तक अकेला रहता आया था और एक भरे परिवार की सुखद् कल्पना नहीं कर सकता था। इस पर भी बम्बई में विनोद के स्वागत के

लिये आयी उसकी बहन तथा पिता को देख उसके मन में टीस उठी थी, कि काश उसका भी कोई स्वागत करने के लिये आता।

वह जब देखता था कि विनोद तथा माला का परस्पर कितना स्नेह है तो मन में एक अभाव अनुभव करता था।

अब माला की मीमांसा को सुन वह प्रभावित हुआ था। उसने कह दिया, "मेरी अनुपस्थिति में पिताजी एक नई स्त्री ले आये हैं। उन्होंने कहा है कि वह मेरी माँ के रिक्त स्थान की पूर्ति कर रही है और मुझे उसका माँ के समान आदर करना चाहिये। मैंने कह दिया है कि मैं पूर्णरूपेण आदर करूँगा और आशा करता हूँ कि जिस वस्तु का हमारे परिवार में अभाव है, अर्थात् एक बहन का, इसको वह दूर कर सकेगी।"

माला यह नई बात सुन आश्चर्यचकित रह गई। कुछ क्षण तक विचार कर बोली, "परन्तु जब तक आपकी बहन आयेगी और आपको भाई समझने के योग्य होगी, तब तक आपका विवाह हो जायेगा। तब शायद आप उससे स्नेह न करें। यह भी सम्भव है कि बहन के स्थान भाई आ जाये।"

"इसमें मैं क्या कर सकता हूँ? सब प्रकृति के हाथ में है।"

"आप बहन के स्थान की पूर्ति कर सकते हैं। तब आपको यह अभाव खटकेगा नहीं। मित्र की बहन भी तो बहन के समान होती है। आप मुझको बहन बना लीजिए।"

सोहन इस सुझाव पर माला का मुख देखता रह गया। माला को समझने में देर नहीं लगी कि उसने भी उसके हृदय के मर्म स्थान को छू लिया है। पूर्व इसके कि सोहन कुछ उत्तर दे, विनोद, उसके पिता और चाचावहाँ आ पहुँचे। सोहन ने उठकर विनोद से हाथ मिलाया और उसके पिता तथा चाचा को नमस्ते की। पश्चात् इधर-उधर की बातें होने लगीं।

विनोद की, दिल्ली के एक हस्पताल में सर्जन के पद पर नियुक्ति हो गई थी। उसके चाचा का उच्च अधिकारियों से मेलजोल बहुत सहायक सिद्ध हुआ था। इस शुभ सूचना से सब प्रसन्न थे। सबसे अधिक प्रसन्नता विनोद

के चाचा को हुई थी जो आरम्भ से उसका हितचिन्तक रहा था। अपनी बेटी सुदेश का व्यवहार देख उसका स्नेह विनोद से और भी अधिक हो गया था। उसने अपने भाई को सम्बोधन कर कहा, "भैया ! अब विनोद के लिए लड़की ढूंढने का कार्य शेष रह गया है। तुम्हारी इच्छा हो तो इसका शीघ्र प्रबन्ध हो सकता है। कल तुम लड़की को देख लो। फिर भाभी भी बरेली से आ रही हैं। विवाह भी शीघ्र हो जाना चाहिए। आयु भी तो बहुत हो गई है।"

भगवतीप्रसाद अपने भाई का सुझाव सुन गम्भीर हो गया। वह हृदय से चाहता था कि विनोद का शीघ्र विवाह हो जाये। परन्तु वह देख रहा था कि उसके बेटे पर बनवारीलाल अपना अधिकार अधिक समझने लगा है। भगवती स्वयं बरेली नगर का एक बहुत बड़ा व्यापारी था। वह चाहता था कि उसकी पतोहू एक व्यापारी की लड़की होनी चाहिए। उसका जीवन-समस्याओं पर विचार करने का ढंग विलक्षण था। उसके विचारानुसार बनिये की बेटी एक दास प्रवृत्ति रखने वाले पिता की बेटी की अपेक्षा परिवार के प्रबन्ध में अधिक कुशल और सफल सिद्ध हो सकती है। सुदेश की जीवन कथा सुनकर तो भगवतीप्रसाद की यह धारणा और भी दृढ़ हो गई थी।

यद्यपि भगवतीप्रसाद ने विनोद और माला को बनवारीलाल के कहने पर ही उच्च-शिक्षा दिलवाई थी, तो भी अपने और बनवारी के रहन-सहन में अन्तर उसको सदा खटकता रहा था। वह चाहता तो विनोद को अपने व्यापार में सम्मिलित कर उसको भी एक कुशल दुकानदार बना सकता था, किन्तु वह माला और विनोद की हार्दिक इच्छा का विरोध नहीं कर सका। परिणामस्वरूप विनोद डॉक्टर बन सका और माला दर्शनशास्त्र में पण्डित।

आज वह अपने इकलौते बेटे के विवाह के विषय में अपने भैया की सम्मति नहीं चाहता था। अपनी पत्नी की सहायता से वह किसी कुशल गृहिणी को पतोहू बनाने का इच्छुक था। अतः उसने कहा, "बनवारी !

जिस लड़की की ओर तुम संकेत कर रहे हो, वहाँ विनोद की माँ नहीं मानेगी। अतः उस प्रस्ताव को इसकी माँ के आने तक स्थगित ही रखो।"

बनवारीलाल को फिर कुछ कहने का साहस नहीं हुआ। वह अपने साले की लड़की के लिए कह रहा था। भगवतीप्रसाद उसको भली-भाँति जानता था। बनवारीलाल का साला दिल्ली पुलिस में किसी ऊँचे पद पर था। भगवती पुलिस वालों से सम्बन्ध नहीं बनाना चाहता था। वह बनवारीलाल को कारण स्पष्ट नहीं बता सका। बात यूँ ही टल गई।

यह सब वार्तालाप सोहनलाल, विनोद और माला चुपचाप सुन रहे थे। विनोद तो कुछ समझ नहीं सका कि किस लड़की के बारे में बात हो रही है। माला को विस्मय हो रहा था कि आज पिताजी चाचाजी के सुझाव पर क्यों गम्भीर मुद्रा धारण किये हुए हैं। ऐसा पहले कभी नहीं हुआ था। उसे आज भी स्मरण था कि विनोद के इंगलैण्ड जाने के पश्चात् भी पिताजी उसे कॉलेज भेजने पर अन्यमनस्क-से थे। केवल चाचाजी की युक्तियाँ ही उन्हें प्रभावित कर सकी थीं।

माला के विचार से विनोद के विवाह का विषय तो पारिवारिक प्रसन्नता का था। पिताजी का बात को टाल देने का कारण उसकी समझ में नहीं आया। उसका मन चाहता था कि यदि पिताजी मान जाते तो कम-से-कम वह भी अपनी होने वाली भाभी को देख लेती। इस पर भी इस विषय में वह कुछ कह नहीं सकी।

छः ○ ○ ○

विनोद उठकर दूसरे कमरे में चला आया तो माला भी वहाँ आ गई। विनोद तो सोहन से पृथक् में बातें करने वहाँ आया था पर उसने

माला को भी बुला लिया। माला ने पूछा, "आप चाय पियेंगे, भैया!"

"मन तो कर रहा है। फिर सोहन भी तो यहाँ है।"

"हम चाय पी चुके हैं, इसलिए तो आपसे पूछ रही हूँ।"

"ओह! तो कोई बात नहीं। एक बार फिर सही। क्यों सोहन! ठीक है न! अब हम भारत में हैं।"

इस पर सोहन मुस्करा दिया। विनोद का व्यंगपूर्ण उपहास समझ गया था वह। वह स्वयं भी प्रत्येक बात उलटी ही होती देख रहा था। अपने देश में आकर उसको घुटन-सी महसूस हो रही थी। उसका पिता अपने बेटे के विवाह की चिन्ता करने की अपेक्षा अपने लिए एक युवा स्त्री ले आया था। विनोद के विवाह की चिन्ता उसके पिता से अधिक उसके चाचा को थी। माला से वह प्रेम करना चाहता था और वह उसे भाई बनाने की इच्छा रखती थी। अतएव प्रत्येक घटना विपरीत हो रही थी। सोहन का मन दो दिन में ही उचाट हो गया था।

चाय आ गई। दोनों मित्र पीने लगे। सोहन ने कहा, "विनोद! तुम तो दिल्ली में सर्जन नियुक्त हो ही जाओगे। चलो किसी किनारे तो लगे।"

"और तुम!" विनोद ने उत्सुकतापूर्वक उसके मुख पर देखते हुए पूछा।

"मैंने अभी कुछ निश्चय नहीं किया। मेरा मन तो दो दिन में ही उदास हो गया है। इंगलैण्ड में अधिक आनन्द था।"

"मगर आप अभी-अभी कह रहे थे कि आप देश को 'साइंटिफ़िकली साउंड' बनाने के स्वप्न ले रहे हैं और अनुसन्धान का कार्य आरम्भ करने के इच्छुक हैं।" माला ने हस्तक्षेप किया।

सोहन अपनी डाँवाडोल मानसिक अवस्था का रहस्य खुलते देख तनिक झेंप गया। क्षण-भर विचारकर बोला, "मैंने ऐसा कहा तो था, परन्तु अभी निश्चय नहीं कर पाया कि अनुसन्धान का कार्य भारत में करूँगा अथवा किसी अन्य देश में।"

"क्या नई माँ विचारों का मन्थन करने में तो बाधा नहीं बन रही ?" माला ने चुटकी ली।

"नई माँ !" विनोद के मुख से निकल गया और वह सोहन का मुख देखने लगा।

"हाँ विनोद ! देश स्वतन्त्र होने के साथ बहुत परिवर्तन आ गए हैं इस प्राचीन देश में। मैंने जब यह देश छोड़ा था, तब यह दासता की शृंखलाओं में जकड़ा हुआ था। उस समय मैं बालक-मात्र ही था। अब मैं जवान हो गया हूँ। देश स्वतन्त्र हो गया है। पिताजी वृद्ध हो गए हैं तो भी जवान दिखाई देते हैं। माँ के स्थान एक युवा स्त्री आ गई है।

"मैं जब प्राचीन भारतीय संस्कृति का वर्णन अपने देश के नेताओं द्वारा लिखित लेखों तथा समाचारपत्रों में छपे उपदेशों में पढ़ा करता था तो मेरी इच्छा होती थी कि भारत जाकर अपने वैज्ञानिक अनुसन्धान से देश की सेवा करूँ। परन्तु यहाँ आकर तो मैं सोचने लगा हूँ कि लन्दन में रह जाता तो अच्छा था।"

"अर्थात् यहाँ आकर देश के प्रति प्रेम विलुप्त हो गया है।" विनोद ने कह दिया।

इस पर माला की हँसी निकल पड़ी। माला हँसी तो विनोद और सोहन दोनों उस हँसी में सम्मिलित हो गए। जब तीनों हँस चुके तो विनोद ने कहा, "ऐसी घटनाएँ तो हमने इंगलैण्ड में प्रत्यक्ष देखी हैं। फिर यहाँ यदि अपने घर में घटित हो रही हैं तो आश्चर्य करने की क्या बात है? आखिर हमारा नया समाज है तो अँग्रेजी शिक्षा की उपज। इंगलैण्ड में कई वर्ष तक रहने पर भी तुम इतने भावुक बने रहे हो।

"दुख केवल एक बात का है, सोहन ! काश, तुम लन्दन से अँग्रेज बीवी ले आये होते ! तब तुमको ये परिवर्तन बुरे न लगते और आते ही अपने वैज्ञानिक अनुसंधान में जुट जाते।"

"मेरे पिताजी ने भी यही कुछ कहा है। यदि मैं कोई अँग्रेज छोकरी लेकर आता तो अधिक आदर का पात्र बनता। मैं अकेला आ रहा था,

इसलिए पिताजी मेरे स्वागत के लिए नहीं आए।"

"ओह!" विनोद मुस्कराया, "तो यह बात है! क्या तुम्हारे पिता ने तुमको लिखा था कि विवाह करके आना?"

"नहीं। उन्होंने मुझे विज्ञान पढ़ने भेजा था, मैं पढ़ आया। अब यदि पुनः भेजेंगे तो विवाह के विषय में विचार कर लूँगा।"

"तुम भी निरे बुद्धू हो, सोहन! अब उन्होंने स्वयं विवाह कर लिया है। तुम्हें इंगलैण्ड से बीवी लाने के लिए भेजने में भला क्यों धन का अपव्यय करेंगे?

"हाँ, यह सम्भव है कि वह स्वयं चले जायँ और तुम यहाँ रहो। मेरी सम्मति है कि तुम शीघ्र अपने भविष्य के कार्य-क्रम पर विचार करो। विवाह, प्रेम इत्यादि बहुत साधारण बातें हैं। विवाह चाहे अँग्रेज़ लड़की से हो अथवा हिन्दुस्तानी से, एक ही बात है। जब तुम्हारी इच्छा हो, वह भी कर लेना।

"आज के युग में वैज्ञानिकों का बहुत मान होता है। तुम अपना कार्य-क्रम निश्चय कर डालो। मेरे जीजा एम० पी० हैं। मैं कल उनसे मिलने जा रहा हूँ। तुम्हारी इच्छा हो तो तुम्हारा उल्लेख करूँ उनसे? कदाचित कुछ सहायता कर सकें।"

"मैं नौकरी की इच्छा नहीं रखता। इस पर भी उनसे मिलकर मुझे प्रसन्नता होगी।"

"तो ठीक है। कल इकट्ठे चलेंगे। मैं तुम्हारे घर आने से पूर्व तुम्हें फोन कर दूँगा। वहाँ से इकट्ठे चलेंगे।"

सोहन विदा हुआ तो माला जोर-जोर से हँसने लगी। विनोद ने पूछा, "क्या हुआ है तुम्हें?"

"आपका मित्र भी बुद्धू है। कहता कुछ है, सोचता कुछ है। अभी आपके आने से पहले कह रहा था कि मैं उसको सहयोग दूँ। जब मैंने कहा, मैं तो विज्ञान पढ़ी नहीं हूँ तो कहने लगा कि एक वैज्ञानिक और दूसरी फिलॉसफर, दोनों मिलकर देश की उन्नति में सहायक हो सकेंगे। अब

आपको कहने लगा कि विचार कर रहा है कि यदि उसके पिता उसे पुनः इंगलैण्ड भेजें तो वहाँ से अँग्रेज़ बीवी लाने के विषय में पग उठायेगा।"

विनोद भी माला की बात सुन मुस्करा दिया। उसने पूछा, "तुमने यह कैसे अनुमान लगा लिया कि वह बुद्धू है? वैज्ञानिक सदा किसी-न-किसी बात की खोज ही करते रहते हैं। सम्भव है उसका आशय कुछ और हो।"

"वह तो आप जानें। मैं तो यही समझी हूँ कि साइंटिफ़िक रिसर्च (वैज्ञानिक खोज) के स्वप्न लेते लेते उसका मस्तिष्क स्वयं अनुसंधान का केन्द्र बन गया है और हमें नई-नई बातें पता चल रही हैं जो एक मानव-मस्तिष्क कर सकता है।"

यद्यपि माला ने उपहास ही किया, तो भी विनोद का मस्तिष्क दूसरी ओर घूम गया। वह विचार करने लगा कि सोहन कदाचित माला के प्रति कोमल उद्गार रखता है। माला भी प्रसन्नवदन उसकी भोली तथा रहस्य-पूर्ण बातों का उल्लेख करती है।

वह अपनी बहन के जीवन-साथी के विषय में गम्भीरतापूर्वक मनन करने लगा। सोहन एक शिक्षित तथा स्वस्थ युवक था। उसका भविष्य अत्यन्त आशाजनक और उज्ज्वल था। इस पर भी सोहन द्वारा नवीन रहस्योद्घाटन होने से कि उसके पिता ने किसी युवा स्त्री को घर में रख लिया है, वह मन में कुछ निश्चित न कर सका कि सोहन की सिफ़ारिश अपने पिता से करे अथवा नहीं।

विनोद अभी दोनों बातों की जाँच करना चाहता था। माला सोहन के विषय में कैसी भावना रखती है और सोहन की विमाता के आ जाने से उसकी वर्तमान स्थिति कैसी है, यह जानने के पश्चात् ही वह आगे पग उठाने का साहस कर सकता था।

वह बहन के हृदय को भली भाँति पहचानता था। विकसित मन की स्वामिनी होते हुए भी बहुत सरल और भोली लड़की थी वह। एक ही बहन होने से विनोद का स्नेह अत्यधिक था। एक अच्छे जीवन-साथी के

निर्वाचन पर ही माला का भविष्य निर्भर करता था। अतः विनोद बहुत सोच-विचारकर अपने मन की बात अपने पिता से कहना चाहता था।

अगले दिन बाराखम्भा रोड पर सोहन से मिलने वह उसके घर गया। जाने से पूर्व उसने फोन पर पता कर लिया। जब वह वहाँ पहुँचा तो सोहन के पिता अपने काम पर जा चुके थे।

सोहन ने उसका स्वागत करते हुए उसे बिठाया। अभी औपचारिक बातचीत ही आरम्भ हुई थी कि मुमताज भी आ धमकी। सोहन ने विनोद का परिचय देते हुए कहा—"यह मेरे परम मित्र विनोदकुमार हैं। इंगलैण्ड से मेरे साथ ही आये हैं। इनकी नियुक्ति एक सर्जन के रूप में होने वाली है।"

"बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर।" मुमताज ने मुस्कराकर कह दिया।

विनोद ने मुमताज को सिर से पाँव तक देखा। वह अच्छी-खासी सुन्दर प्रतीत होती थी। आयु की बहुत कम लगती थी।

मुमताज ने अति नम्र स्वर में पूछा, "आप चाय लेंगे या कोल्ड ड्रिंक ?"

"मैं नाश्ता करके यहाँ आ रहा हूँ। कुछ पीने को तबीयत नहीं करती।"

"नहीं, कुछ तो पीना ही पड़ेगा। आप यहाँ पहली बार आये हैं।" इतना कह मुमताज ने नौकर को आवाज दी और वह तीन गिलास स्क्वैश के बनाकर ले आया।

स्क्वैश के दो घूँट गले से नीचे उतारते हुए विनोद ने कहा, "मेरी प्रबल इच्छा थी कि तुम्हारे पिताजी के दर्शन करूँ, परन्तु वह बहुत जल्दी ही काम पर चले गए हैं।"

"हाँ ! वह सुबह आठ बजे ही निकल जाते हैं।"

"सोहन ! तुम इन्हें फ़रीदाबाद ले जाओ। कारखाना भी देख आओगे और यह कपूर साहब से मिल भी लेंगे।" मुमताज का कहना था।

"नहीं। इस समय तो मैं अपने बहनोई से मिलने जा रहा हूँ। चलो सोहन ! चलें।"

दोनों उठकर कोठी से बाहर आ गए। थोड़ी दूर चलने पर उन्हें टैक्सी मिल गई और वे विक्रमसिंह के मकान पर जा पहुँचे।

विक्रमसिंह विनोद की प्रतीक्षा ही कर रहा था। विनोद ने हाथ जोड़ कर बहनोई को नमस्ते की। अपना और सोहन का परिचय दिया। पहला अवसर था, साले-बहनोई के परस्पर मिलने का। विक्रमसिंह ने उन्हें बिठाया तो विनोद ने मकान में कोई चहल-पहल न देख पूछ लिया, "सुदेश कहाँ गई है, जीजाजी !"

"वह कनॉट प्लेस तक गई है। उसकी सहेली आ गई थी। उसे शॉपिंग करने के लिए साथ ले गई है। उसे मालूम तो था कि तुम आने वाले हो। वह कह गई है कि यदि सिनेमा-शो देखने न गई तो जल्दी लौट आयेगी।"

"ओह !" विनोद के मुख से निकल गया।

"सुनाओ। कहाँ नियुक्ति हुई है ?"

"मेरे लिए तो चाचाजी यत्न कर रहे हैं कि दिल्ली में ही रह जाऊँ। यह मेरे मित्र हैं जो लन्दन से डॉक्टरेट करके आये हैं। इन्होंने विज्ञान पढ़ा है। आप इनकी कुछ सहायता कर सकें तो अति कृपा होगी।"

"अणु-शक्ति अनुसंधानशाला के अध्यक्ष मेरे परम मित्र हैं। उनसे कहूँगा यदि वे इनकी सेवाओं से लाभ उठा सकें। परन्तु कल तो मैं अलमोड़ा जा रहा हूँ। पिताजी की आँखों का ऑपरेशन होना है। दो सप्ताह तो लग ही जायेंगे। इसके पश्चात् आप मुझे मिल सकते हैं।"

"सुदेश भी जायेगी क्या ?"

"उसके विषय में मुझे विदित नहीं।"

विनोद चुप बैठा रहा। वह सोचने लगा विचित्र व्यक्ति है। अपनी पत्नी का कार्यक्रम तक नहीं जानता। इस पर भी उसे दुख सुदेश के व्यवहार से हो रहा था। यह जानते हुए भी कि विनोद मिलने आ रहा

से, वह सहेली के साथ चली गई थी। उसे इस मिलन में रस नहीं आया था। उसके बहनोई ने तो उसे पानी तक नहीं पूछा था।

तीनों मौन थे। कमरे में निस्तब्धता छाई थी। विनोद विचार ही कर रहा था कि अब उसको विक्रमसिंह से विदा लेनी चाहिए कि उसके कानों में खिलखिलाकर हँसने की आवाज़ पड़ी। क्षण-भर में सुदेश ने अपनी सखी के साथ कमरे में पदार्पण किया।

"हैलो विनोद ! हाऊ डु यू डू ?"

"फ़ाइन, तुम सुनाओ ! मैं तो अब जाने ही वाला था। सोचा बहन को भाई से मिलने की इच्छा नहीं होगी, तभी सूचना मिलने पर भी चली गई।"

"तुमसे क्या बोलूँ, विनोद ! तुम तो अब साम्राज्यवादियों के देश में रहकर आये हो। तुम्हारा स्वभाव और विचार भी बदल गये होंगे।"

"हाँ। मैंने भी यही सुना है कि तुम भी बहुत बदल गई हो। क्या तुम भी कम्युनिस्ट बन गई हो ?"

"तो क्या तुम उनके विरोध में कुछ कहना चाहते हो ?"

"मैं भली भाँति जानता हूँ कि कम्युनिस्ट कार्यकर्ता तथा संसद-सदस्य के मकान पर बैठा हूँ और तुम यह भी जानती हो कि मुझे राजनीति में रुचि नहीं है।"

"मैं यह नहीं मानती। आजकल कोई भी पढ़ा-लिखा नागरिक 'पॉलिटिक्स' से अछूता रह सके, असम्भव है।"

"मुझको तो लेशमात्र भी रुचि नहीं। व्यर्थ की माथा-पच्ची करना है। सुनाओ, तुम अपने नये जीवन में प्रसन्न हो ?"

"तुम्हें कैसी लगती हूँ ?"

"मेरे विचार से तो तुम्हें प्रसन्न होना चाहिए।"

"ओह ! सो काइंड आफ़ यू। मैं वास्तव में प्रसन्न हूँ, विनोद ! किन्तु तुम हमारे परिवार के पहले व्यक्ति हो जो ऐसा अनुभव करते हो।"

थोड़ी देर बैठने के पश्चात् विनोद विदा होने के लिए उठ खड़ा हुआ।

उसने विक्रमसिंह को सम्बोधन करके कहा, "जीजाजी ! आशा है आप अलमोड़ा जाने से पूर्व अवश्य मिलेंगे। हम सब यहाँ हैं। यदि सुदेश आपके साथ नहीं जा रही तो उसको वहाँ भेज दीजिएगा। अकेली यहाँ कैसे रहेगी ?"

पूर्व इसके कि विक्रम विनोद के कथन के उत्तर में कुछ कहता, सुदेश ने कहा, "तुम लन्दन में इतना काल व्यतीत करने पर भी नारी को भीरु समझते हो। मुझको अकेले यहाँ रहने में डर क्यों लगेगा ?"

"तुम मेरा भावार्थ नहीं समझी, सुदेश ! तुम्हारे पिताजी और हम लोगों के दिल्ली में रहते हुए भी तुम इस मकान में दो सप्ताह तक अकेली पड़ी रहोगी, यह कोई अच्छी बात है ?"

"अपना-अपना विचार है, विनोद ! अब मेरा अपना घर है। मुझको भिन्न रूप में सोचना चाहिए।"

"पगली ! तुम तो व्यर्थ में भावुक बन रही हो। हम उस घर में तुम्हारा अभाव अनुभव करते हैं। इसीलिये मैंने कहा था कि कुछ दिन जब अवसर मिला है तो वहीं आ जाओ। माता और पिताजी भी यहाँ हैं।" इतना कहकर विनोद सोहन के साथ वहाँ से चला गया।

मार्ग में सोहन ने कहा, "तुम्हारे जीजाजी तो बहुत निष्ठुर व्यक्ति प्रतीत होते है ?"

विनोद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप चलता गया। सोहन भी अपने विचारों में खो गया। दोनों में किसी को ध्यान न रहा कि वे पैदल चल रहे हैं। एकाएक फुटपाथ पर खड़े एक भिखारी ने विनोद का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया।

यह व्यक्ति अधेड़ आयु का था। उसका कुर्ता फटा हुआ था और हड्डियाँ दिखाई दे रही थीं। विनोद ने बिना कुछ बोले एक आना उसके डिब्बे में डाल दिया। परन्तु उस मंगते ने नम्र तथा करुणामय स्वर में पूछा, "मुझे अभागे को पहचाना, बाबूजी !"

विनोद ध्यान से उसके मुख पर देखने लगा। उसे ऐसा भास हुआ कि

उसने इस व्यक्ति को पहले कहीं देखा है। वह स्मरण करने का यत्न कर रहा था कि भिखारी ने कहा, "मेरा नाम चन्दू है, बाबूजी ! मैं बरेली में आपकी दुकान पर काम करता था। सात वर्ष पूर्व मुझको चोरी के अपराध में निकाल दिया गया था।"

"ओह ! अब याद आया।" विनोद ने कहा। उसे चन्दू की दयनीय दशा देख दुःख हुआ। अब उसको पूर्ण घटना स्मरण हो आई। उसके पिता ने चन्दू पर दो सौ रुपये ग़बन का आरोप लगाया था और पुलिस के हवाले कर दिया था। विनोद ने अपने पिता से कहा भी था कि यह प्रमाणित नहीं हो सका कि चन्दू ही दोषी है। किसी कम वेतन पाने वाले को ही अपराधी मान लेना युक्तिसंगत नहीं। हो सकता है स्वयं मुनीम ने ग़बन किया हो और चन्दू को फँसा दिया हो। किन्तु उसके पिता नहीं माने। चन्दू अन्त तक कहता रहा कि वह निर्दोष है।

पुलिस ने चन्दू के साथ कैसा व्यवहार किया और वह वर्तमान अवस्था को कैसे पहुँचा, विनोद नहीं जानता था। इस पर भी उसको इतना स्मरण था कि चन्दू के जाने के एक मास पश्चात् मुनीम दुकान से एक सहस्र रुपये लेकर भाग गया था और पिताजी अपने एक विश्वस्त व्यक्ति द्वारा विश्वासघात करने पर विस्मय करते रहे थे। अब उन्हें भी सन्देह हुआ कि चन्दू दोषी नहीं था।

भगवतीप्रसाद ने मुनीम के कहने पर ही विश्वास कर लिया था कि दो सौ रुपये चन्दू को देकर नन्दलाल की दुकान पर भेजा गया था। वह रुपये चन्दू ने वहाँ पहुँचाने की अपेक्षा स्वयं हज़म कर लिए।

चन्दू इस विषय में कुछ जानता तक नहीं था। मुनीम ने दुकान के एक अन्य कर्मचारी को भी अपना साक्षी बना लिया था और भगवतीप्रसाद द्वारा स्वयं चन्दू पर सन्देह करने से पुलिस ने उसको पकड़ लिया था।

विनोद ने टैक्सी बुलाई और सोहन के साथ घर की ओर चल दिया। चन्दू से उसने कहा, "तुम आगे ड्राइवर के पास बैठ जाओ।"

घर पहुँचकर विनोद ने अपने पिता से कहा, "पिताजी ! आपका

पुराना अपराधी चन्दू आया है।"

भगवतीप्रसाद विस्मय-भरी दृष्टि से चन्दू को देखने लगा। उसने उसकी दरिद्रता और दयनीय दशा देख केवल इतना कहा, "अच्छा हुआ तुम मिल गये हो। तुम्हें अब भी दुकान पर काम मिल जायेगा।"

चन्दू का मुख अपने स्वामी की उदारता देख खिल उठा। उसने साहस बटोर कर कहा, "मालिक! फिर मुझको चोर समझ निकाल तो नहीं देंगे?"

"तुम चोरी नहीं करोगे तो निकालने का प्रश्न ही नहीं उठता। अब तुम किसी मुनीम के चक्कर में मत फँस जाना।"

विनोद हँस पड़ा। मुनीम के चक्कर में तो स्वयं उसका पिता फँस गया था। चन्दू बेचारा तो व्यर्थ में दोषी मान लिया गया था।

चन्दू को नये कपड़े बनवा दिये गए और वह पुनः नौकर रख लिया गया।

इसके पश्चात् सुदेश और विक्रमसिंह की बातें चल पड़ीं। विनोद ने बताया कि वह उन दोनों को यहाँ आने का निमन्त्रण दे आया है। भगवतीप्रसाद का कहना था कि सुदेश अपना काला मुख लेकर यहाँ सब के सामने नहीं आयेगी।

सात ○ ○ ○

एक सप्ताह के पश्चात् विनोद को, दिल्ली में ही विशेष सर्जन की नियुक्ति का पत्र मिल गया और वह अपने काम पर जाने लगा। अब उसकी माँ भी दिल्ली आ गई थी। चन्दू को बरेली भेज दिया गया था।

इस उपलक्ष में बनवारीलाल की कोठी पर एक विशेष भोज का

आयोजन किया गया। मित्र-सम्बन्धियों को निमन्त्रण भेजे गए। सोहन, उसके पिता तथा मुमताज भी आमंत्रित थे। विक्रम अलमोड़ा चला गया था। सुदेश अपने मकान में अकेली ही रहती थी। जब उसको निमन्त्रण मिला तो वह भी भोज में सम्मिलित हुई।

माला ने गीता और उसके पिता रजनीकान्त को भी आमंत्रित किया था। धूमधाम से यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। विनोद की माँ का हृदय अपने एकमात्र बेटे की उन्नति पर गद्‌गद् हो गया। यद्यपि उसको आँखों से कम दिखाई देता था, तो भी वह समझ रही थी कि विनोद बहुत बड़ा डॉक्टर बन गया है। इसी प्रकार पूरे ठाठ-बाट से वह उसका विवाह भी करने की इच्छा रखती थी।

भोज के अगले दिन भगवतीप्रसाद अपनी पत्नी और माला सहित बरेली लौट गया। विनोद को तो अब दिल्ली में रहना ही था।

बरेली पहुँचकर विनोद की माँ कलावती ने अपने पति के सम्मुख विनोद के विवाह की चर्चा छेड़ दी। इस पर भगवतीप्रसाद ने कहा, "देखो कला! पहले तो यह निश्चय हो जाना चाहिए कि माला का विवाह पहले होगा अथवा विनोद का।"

"घर में बहू आ जाये। पश्चात् माला भी अपने घर चली जाएगी। विनोद से वह आयु में भी तो बहुत छोटी है। अब मुझसे तो घर-गृहस्थी सँभाली नहीं जाती।"

"परन्तु इससे हमें तो कुछ लाभ होने वाला नहीं है। विनोद की बहू उसके साथ दिल्ली में रहेगी और मेरा कारोबार यहाँ है। तुम्हें तो फिर भी घर की देखभाल करनी ही पड़ेगी।"

"कुछ भी हो अब शीघ्र उसका विवाह हो जाना चाहिए। पश्चात् माला के हाथ पीले कर हम निश्चिन्त हो जाएँगे।"

"अच्छी बात है! तुम उसके लिए लड़की ढूंढो।"

इतनी बात पति-पत्नी में हुई। बिरादरी में जब इस बात का पता चला कि भगवतीप्रसाद का बेटा दिल्ली में एक बड़ा डॉक्टर नियुक्त हो

गया है तो उसके लिए विवाह के प्रस्ताव आने लगे। स्त्रियाँ कलावती के पास आने लगीं और पुरुष भगवतीप्रसाद के पास।

कलावती धर्मपरायण, भगवद्भजन में रत रहने वाली स्त्री थी। अतः वह ऐसी ही, भगवान् को मानने वाली सुशील पतोहू की खोज में थी।

अब उसकी दृष्टि दुर्बल पड़ गई थी। गीता और रामायण वह माला से सुना करती थी। रामायण सुनते-सुनते वह झूम उठती और अनायास ही कह देती, "विनोद की वहू ऐसी आये जो मुझे रामायण पढ़कर सुना सके।" इस पर माला मुस्कराकर कहती, "माँ ! तुम अपना स्वार्थ देखती हो। मैं तो चाहती हूँ कि भाभी ऐसी आनी चाहिए जो भैया को भली लगे और हम सबमें घुल-मिल जाये। रामायण न भी सुना सकेगी तो मैं सुना दिया करूँगी।"

कई दिन तक ऐसा मधुर वातावरण रहा कलावती के घर में। अन्त में एक दिन आया जब कलावती ने अपने पति से कहा, "दीनदयाल की पत्नी आई थी। अपनी छोटी लड़की सरोज के लिए कह रही थी।"

"कितना पढ़ी है वह ?" भगवतीप्रसाद ने पूछा।

"गत वर्ष बी० ए० किया है।"

"कैसी लगी है तुम्हें ?"

"देखने में तो सुन्दर है। उसके मन की सुन्दरता के विषय में तो उससे मिलने पर पता चल सकता है।"

"दीनदयाल तो भला व्यक्ति है। अपनी बिरादरी का भी है। तुम सरोज से मिलो। पश्चात् विचार करेंगे।" भगवतीप्रसाद का कहना था।

कलावती अपने गाँव में घर पर ही पढ़ी थी। इस पर भी अपने मन में स्पष्ट भाव रखती थी कि उसकी पतोहू ऐसी होनी चाहिए जो एक डॉक्टर को प्रसन्न रख सके। वह सरोज से मिली, उससे बातें कीं। वह उसको सुन्दर और भली लड़की प्रतीत हुई। शेष भविष्य के गर्भ में क्या है, कोई नहीं कह सकता था।

कलावती तो गीता के उस सिद्धान्त को मानने वाली थी कि प्रत्येक

मानव कर्म के वशीभूत होकर संसार में विचरता है। कर्म के फल से कोई नहीं बच सकता। वह भगवान् कृष्ण के इस वाक्य में दृढ़ विश्वास रखती थी। अतएव उसने अपने पति को बताया, "मैंने सरोज को पसन्द कर लिया है। आप देखना चाहें तो चलकर देख लें।"

"वह मुझसे बात तो करेगी नहीं। शेष रही उसके रूप-रंग देखने की बात, यह विनोद से सम्बन्ध रखती है।"

"मैंने माला द्वारा विनोद को पत्र लिखवा दिया है कि वह एक दिन के लिए यहाँ आ जाए। वैसे सरोज के माता-पिता तो सरोज को दिल्ली ले चलने के लिए भी तैयार थे, परन्तु मैंने मना कर दिया है।"

"तो तुमने निश्चय कर लिया है दीनदयाल के परिवार से नाता जोड़ने का ?"

"संयोग यहाँ प्रबल दिखाई देता है, अन्यथा अनेक परिवारों से प्रस्ताव आये, मेरा मन नहीं माना।"

भगवतीप्रसाद चुप कर गया। विनोद के विचार सुनने के पश्चात् ही वह कुछ निर्णय कर सकता था।

विनोद को माला का पत्र मिला तो वह शनिवार की रात की गाड़ी से बरेली आ पहुँचा। रविवार को लड़की उसे दिखाई गई और वह उसी दिन दिल्ली लौट गया।

भगवतीप्रसाद ने कलावती से पूछा, "विनोद कुछ कह गया है ?"

"आपसे उसकी बात नहीं हुई क्या ?"

"नहीं तो, मेरा विचार है उसे लड़की पसंद नहीं आई।"

"मैंने उससे पूछा था। वह कहने लगा, 'माँ! जब तुमने लड़की पसन्द कर ली है तो मेरे लिए ठीक ही है।' पश्चात् उसने माला से पूछा तो वह बोली, 'मुझे तो सरोज बहुत अच्छी लगी है।' इस पर विनोद अपनी सहमति प्रकट कर दिल्ली लौट गया है।"

"लेकिन विनोद का मुझसे बात न करना, मेरे मन में सन्देह उत्पन्न कर रहा है।"

"आपने उससे कुछ पूछा नहीं, उसने बताया नहीं। अब आपने भी तो लड़की को देखा है। आप बताइए उसमें क्या कमी है?"

"ठीक है, तुम देख लो।"

कलावती ने विनोद की सगाई सरोज से कर दी और विवाह की तिथि निश्चित कर विनोद और बनवारीलाल को सूचित कर दिया गया।

विनोद इस सूचना से प्रसन्न ही था। वह दिन-भर के चीर-फाड़ के कार्य से घर लौटता तो उसको अकेलापन अनुभव होता था। अब दो मास के पश्चात उसका विवाह होने वाला था। इससे उसे मन में गुदगुदी होने लगी। सरोज उसको सुन्दर लगी थी। वह लज्जा और संकोचवश चुप-चाप उसके सम्मुख बैठी रही थी। जो कुछ विनोद की माँ ने उससे पूछा था, वह संक्षेप में उत्तर देती रही थी। इस पर भी उसकी व्रीड़ा अनुपम थी।

सरोज के मन में तो भय था कि उसको देखने आने वाला युवक 'इंगलैण्ड रिटर्न्ड' डॉक्टर है। वह स्वयं उससे कई प्रश्न पूछेगा। किन्तु उसे विस्मय हुआ जब विनोद भी चुपचाप बैठा रहा। उसने केवल सरोज के पिता की बातों का उत्तर दिया था।

विनोद ने सोहन से अपने विवाह का उल्लेख किया तो उसने कहा, "तुम अच्छे रहे, विनोद! नौकरी भी मिल गई और विवाह भी करने जा रहे हो। मैं तो जब से आया हूँ भटक ही रहा हूँ।"

"भाई! तुम वैज्ञानिक ठहरे। एक अनुसंधान सफल हो गया तो पाँचों घी में होंगी।"

"यह सब हवा में तीर छोड़ने के समान है।"

"क्यों? निराशा का क्या कारण है?" विनोद ने पूछ लिया।

"पिताजी से बातें हुई थीं। मैंने इच्छा प्रकट की थी कि मैं अपनी अनुसन्धानशाला खोलना चाहता हूँ। वे कहने लगे, 'तुम सफल नहीं हो सकोगे। यदि सरकार के अधीन कार्य करने की इच्छा नहीं तो कारखाने में काम करना शुरू कर दो। तुम्हारे विज्ञान का कुछ तो लाभ कारखाने

को होगा ही ।' "

"इन अनर्गल बातों से उनका क्या अभिप्राय है ?"

"धन बैंक से निकालकर देना नहीं चाहते ।"

"धन के बिना तुम कैसे आगे बढ़ोगे ? जब एक लक्षाधीश अपने बेटे को नहीं देता तो सरकार से आशा लगाना व्यर्थ है ।"

"धन के अभाव में मैं क्या कर सकता हूँ ? पिताजी के साइकलों के कारखाने में मैं क्या करूँगा ?"

विनोद विचार करने लगा, सोहन का पिता बहुत काइयाँ है । यदि डॉक्टर बनने के पश्चात् उसका पिता उससे कहता कि वह उसके साथ दुकान पर काम करे, तो क्या यह उच्च-शिक्षा का उपहास करना नहीं था ? डॉक्टर बनकर आढ़त की दुकान पर काम करना कितना हास्यास्पद है ! इसी प्रकार सोहन का पिता अर्जित पूँजी में से सोहन को कुछ देने की अपेक्षा उससे उपहास ही कर रहा था । वह समझ नहीं सका कि उसने यदि अपने एकमात्र बेटे से इस प्रकार व्यवहार करना था तो उसको उच्च-शिक्षा ही क्यों दिलवाई थी ?

क्या मुमताज़ का सोहन के जीवन में आना उसके भविष्य को अन्धकारमय बनाने में सहायक हो रहा था ? किशोरीलाल कपूर मुमताज़ से कदाचित् अपना उत्तराधिकारी पाने की आशा कर रहा होगा । विनोद को यह सब विचारकर बहुत दुःख हुआ । सोहन मन में अनेक अरमान लेकर भारत आया है । यहाँ वह अभी तक अँधेरे में भटक रहा है । उसने सोहन से तो कुछ नहीं कहा, पर मन में सोहन के विषय में विक्रमसिंह से पुनः बात करने का निश्चय कर लिया ।

कुछ दिन के पश्चात् सोहन ने विनोद को बताया कि उसने लन्दन के अपने पुराने प्रोफ़ेसर से पत्र-व्यवहार किया था । उसका उत्तर आया है कि यदि वह लन्दन में काम करना चाहे तो वह उसकी सहायता कर सकता है । उसने यह भी रहस्योद्घाटन किया कि वह तो जाना चाहता था, परन्तु मुमताज उसको रोके हुए है । उसका कहना है कि वह सुअवसर

की खोज में है, जब कपूर साहब से उसकी सिफ़ारिश कर उसे अपनी अनुसन्धानशाला स्थापित करने की स्वीकृति दिलवा सके।

विनोद को इससे विस्मय हुआ। पिता पुत्र की इच्छा पूर्ण नहीं करना चाहता, पर उसकी रखैल सोहन की हितचिन्तक बन गई है।

विवाह के दिन से पाँच दिन पूर्व विनोद सोहन को बरेली ले गया। भगवतीप्रसाद विवाह की तैयारी के निमित्त कलावती और माला के साथ दो दिन के लिए दिल्ली आया और बनवारीलाल से अनुरोध कर गया कि वह उनके साथ चले। परन्तु उसने कह दिया कि अभी बहुत दिन हैं। वह स्वयं पहुँच जाएगा।

भगवतीप्रसाद विनोद को साथ लेकर सुदेश और विक्रमसिंह से भी मिला। उन दोनों ने तो स्पष्ट कह दिया कि वे बारात के दिन ही पहुँचेंगे। संसद का अधिवेशन चालू था और विक्रम जा नहीं सकता था। सुदेश का कहना था कि वह इतना रोचक कार्यक्रम छोड़कर बरेली नहीं जाएगी। नई दुलहन को देखने और बधाई देने अवश्य पहुँचेगी।

भगवतीप्रसाद ने अधिक कुछ कहना उचित नहीं समझा।

विनोद सोहन के साथ बरेली पहुँचा तो उसके दो दिन पश्चात् बनवारीलाल वहाँ आया। सुदेश और विक्रम बारात के दिन वहाँ पहुँचे। धूमधाम से विवाह सम्पन्न हुआ।

सोहन ने भी सरोज को देखा। वह नये वस्त्रों तथा आभूषणों में अति सुन्दर लगती थी। इस पर भी सोहन ने अनुभव किया कि माला उससे अधिक आकर्षक है।

ज्यों-ज्यों विनोद से उसकी घनिष्ठता बढ़ती जाती थी, वह मन-ही-मन माला के प्रति अधिक आकर्षित हो रहा था। कभी उसका मन कल्पना की ऊँची उड़ानें भरने लगता तो माला को पाने का मधुर स्वप्न पूर्ण होने में उसको लेशमात्र भी सन्देह न रहता।

माला अभी भी सोहन के प्रति पहले-जैसी धारणा रखती थी। उसने एक दिन विनोद से पूछ लिया, "भैया! आपके मित्र सोहनलाल करना

क्या चाहते हैं ? वे तो मुझसे सहयोग देने के लिए कहते थे।"

"माला ! मुझे तो ऐसा समझ आया है कि वह जीवन-भर के लिये तुम्हें अपना सहयोगी बनाना चाहता है। क्या तुम भी उसके प्रति ऐसे उद्‌गार रखती हो ?"

माला को इस प्रकार का सीधा प्रश्न पूछे जाने की आशा नहीं थी। उसने लज्जावश अपनी दृष्टि नीचे कर ली और क्षण-भर विचार कर धीमे स्वर में बोली, "भैया ! वह आपका मित्र है। मैं उसके प्रति वैसे उद्‌गार रखती हूँ जैसे आपके लिए।"

"अच्छी बात है ! समय पर बात स्पष्ट हो गई है। इसका अभिप्राय तो यह हुआ कि तुमने उसका नाम उस सूची से खारिज कर दिया है जो तुम्हारे लिए बनने जा रही है।"

"मैंने तो एक बार सोहन से कहा था कि मित्र की बहन भी बहन समान है। वह अपनी बहन के रिक्त स्थान की पूर्ति कर सकता है। किन्तु उस समय आप लोग आ गए थे और वह कुछ उत्तर नहीं दे पाया था। आज आपके मुख से सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है कि मुझसे......"

"कोई बात नहीं। उसको भ्रम हो गया प्रतीत होता है। यह तो मेरा अनुमान-मात्र है। समय आने पर मैं उसे समझा दूंगा।"

माला ने कुछ उत्तर नहीं दिया और न ही उक्त वार्ता के पश्चात् उसने सोहन के विषय में कोई बात की।

विनोद तो विवाह के पश्चात् दिल्ली लौट गया पर सरोज अपने ससुराल में ही रही। कलावती का कहना था कि वह कुछ दिन पश्चात् बहू को लेकर स्वयं दिल्ली जायेगी। वह सरोज का कुछ दिन तक परिवार के लोगों के बीच रहना अनिवार्य समझती थी।

माला को एक साथी भाभी के रूप में मिल गया। दोनों एक-दूसरे से बहुत जल्द घुलमिल गईं। इस पर भी माला देख रही थी कि भाभी का मन बरेली में लग नहीं रहा।

विनोद का सरोज को प्रतिदिन एक पत्र मिलता था और वह उत्तर

भी वापसी डाक से भेजती थी। जितना समय वह विनोद का पत्र पढ़ने और उसका उत्तर देने में व्यतीत करती, वह प्रफुल्लित दिखाई देती। पश्चात् वह पुनः विचार-मग्न बैठी रहती। माला उससे बातें करती तो वह मुस्कराकर उत्तर दे देती। घर के काम काज में वह हाथ बँटाना चाहती, परन्तु कलावती कह देती, "बहू ! अभी तुम नई इस घर में आई हो। सारा जीवन पड़ा है काम करने को।"

अतः सरोज को माला से बातें करने और अपने प्रियतम को पत्र लिखने के अतिरिक्त कोई काम नहीं था। मध्याह्नोतर जब कलावती माला से रामायण सुनती तो सरोज भी वहाँ दत्तचित्त हो बैठी रहती। माला को 'रामचरितमानस' से चौपाइयाँ कण्ठस्थ थीं।

एक दिन वह 'सुन्दर काण्ड' से अशोक-वाटिका में बन्दी बनाई गई सीता का प्रसंग पढ़ रही थी कि सरोज के सुन्दर लोचनों में जल भर आया। माला को समझने में देर नहीं लगी कि सरोज को भी सीता की भाँति अपने राम की याद सता रही है। उसका मन भी भर आया और वह 'रामचरितमानस' आगे नहीं पढ़ सकी।

दोनों ननद-भाभी कमरे में चली आईं और गले मिलकर खूब रोईं। जब मन हल्का हुआ तो माला ने सरोज की बड़ी-बड़ी आँखों में देखते हुए पूछा, "भाभी ! माँ ने तुम्हें भैया के साथ न भेज अन्याय किया है न ?"

"अन्याय कैसा ! मैंने भी तो जाने की इच्छा प्रकट नहीं की।"

"भाभी ! मैं सब समझती हूँ। भैया को रोज लम्बे-लम्बे पत्र लिखती हो और एकान्त में उनके वियोग में तड़पा करती हो।"

"यह तो स्वाभाविक है पगली !"

"भाभी ! मैं इन कोमल उद्गारों का हृदय में अनुभव भले ही न करूँ, किन्तु तुम्हारी अवस्था देख अनुमान तो लगा ही सकती हूँ।

"तुम्हारे माता-पिता, भाई-बहन, सास-ससुर और मैं, सब तो यहाँ तुम्हारे पास हैं। फिर भी तुम प्रसन्न नहीं रहतीं। तुम्हारे हृदय में छिपे दर्द की झलक तुम्हारे सुन्दर मुख पर स्पष्ट दिखाई देती है। यह क्या

निजस्वता है, मैं समझ नहीं सकी।"

"पगली ! इन बातों की अनुभूति विवाहित जीवन में पग रखने से ही होती है। मैं तुम्हारे भैया की अर्द्धांगिनी हूँ। अत: उनके विषय में सोचना स्वाभाविक है। क्या तुम समझती हो, वह नहीं सोचते होंगे ?"

"तो तुम्हारा विचार है कि भैया भी तुम्हारी तरह रोया करते होंगे ?" माला ने मुस्कराते हुए पूछा।

"यह तो मैं कुछ नहीं कह सकती। इतना जानती हूँ उन्हें अकेलापन अखरता होगा। मैं विचार करती हूँ वह अस्पताल से थके-माँदे घर आते होंगे तो घरवाली की अनुपस्थिति में उन्हें घर सूना-सा लगता होगा। कौन उनका स्वागत करता होगा ! दिन-भर का समाचार पूछकर कौन उनकी थकावट दूर करता होगा ! मुझे तो उनकी सेवा का कुछ अवसर ही नहीं मिला। नौकर चाय बनाकर सामने रख देता होगा और वह चुपचाप पी लेते होंगे।"

"क्या भैया ने ऐसा लिखा है, भाभी !"

"मेरा मन मुझसे कहता है।" सरोज ने उत्तर दिया। उसका गला भर आया था और आँखें पुन: डबडबा आई थीं।

माला का मन उदास हो गया। उसने समझा एक सुन्दर पक्षी को पिंजड़े में बन्द कर दिया गया है। इस पर भी वह अपने भैया-भाभी की मन-ही-मन प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकी, जिन्होंने माँ की इच्छा का विरोध नहीं किया। माला मनन करने लगी, वह किस प्रकार सरोज की सहायता कर सकती है। उसको समझ नहीं आ रही थी कि माँ को वह कैसे समझाए कि वह दो प्रेमियों को तड़पाकर पाप की भागी बन रही है। ऐसी बात अपने बड़ों से कहने का उसमें साहस नहीं था।

वह तो इतना जानती थी कि विवाह के दो दिन पश्चात् जब उसने सरोज से पूछा था, "कैसा लगा है यह नया घर ?" तो उसने अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से उसके मुख पर देखते हुए संक्षेप में उत्तर दिया था, "तुम्हारे भैया बहुत ही अच्छे हैं।" उस समय माला का सिर गर्व से ऊँचा हो

गया था। वह समझ गई थी कि सरोज विनोद के व्यक्तित्व से अति प्रभावित हुई है। पश्चात् उन दोनों में परस्पर पत्र-व्यवहार से तो वह यह समझ पाई थी कि दोनों एक-दूसरे से बहुत प्रेम करते हैं। सरोज के मधुर व्यवहार ने तो इस बात की भी पुष्टि कर दी थी कि वह एक सुशील और सच्चे अर्थों में शिक्षित नारी है।

सरोज को ससुराल में रहते दो सप्ताह बीत गए। कलावती ने उसे दिल्ली भेजने का नाम नहीं लिया। इन दिनों वह दो दिन के लिए अपने मायके भी गई। किन्तु वहाँ तो उसका मन और भी उचाट रहने लगा। अतः जब तीसरे दिन माला उससे मिलने वहाँ गई तो उसके कहने से उसके साथ लौट आई। दोनों का समय वहाँ अच्छा बीत जाता था, यद्यपि अपने पति की अनुपस्थिति सरोज के लिए असह्य थी।

एक दिन माला के भविष्य के बारे में चर्चा चल पड़ी। माला ने उसे बताया कि वह ग्रामों में जाकर ग्रामवासियों में शिक्षा का प्रसार करना चाहती है।

माला पहले एक-दो बार ज़िला बरेली के दो-चार ग्रामों में घूम आई थी। उसने सरोज को बताया कि स्थानीय कांग्रेस कमेटी के प्रधान ने उसे बुलाया था। उनका कहना है कि वह ग्रामीण स्त्रियों में कांग्रेस और गांधीवाद का प्रचार करे। निर्वाचन सन्निकट हैं। दूसरी पंचवर्षीय योजना चालू है। ग्रामवासियों को अपने मत का ठीक प्रयोग करने के लिए उनका उचित मार्ग-दर्शन करने से बढ़कर धर्मयुक्त कार्य दूसरा नहीं।

"भाभी ! मैंने ग्रामवासियों के जीवन का कुछ अध्ययन किया है। वे उचित शिक्षा के अभाव में जीवन-मीमांसा के विषय में भ्रमात्मक धारणा रखते हैं। अब मैं कांग्रेस प्रधान के सुझाव पर विचार कर रही हूँ। जिस संस्था में पहले कार्य कर रही हूँ, उसके प्रधान कांग्रेस प्रधान के घनिष्ठ मित्र हैं। मालूम होता है उन्होंने ही मेरा परिचय कांग्रेस प्रधान को दिया है।"

"माला !" सरोज ने कहा, "मैं तो एक बात जानती हूँ कि निर्वाचन,

पंचवर्षीय योजना आदि बातों को लेकर भोले-भाले ग्रामवासियों का बहकाना और फिर उनको शिक्षित करने का दावा करना बकवास है।

"कोई मनुष्य जब यह कहता है कि वह अमुक बात इसलिए करना चाहता है कि इससे समाज अथवा देश का भला होगा तो वह सबसे बड़ा स्वार्थी है। वह अहंकारी है।

"स्वतन्त्रता के पश्चात् स्वार्थ हम लोगों में अधिक आ गया है। जो ग्रामवासी पहले आत्मा-परमात्मा में विश्वास रखते थे, झूठ बोलने से डरते थे, आज राजनीति के चक्कर में पड़कर दलबन्दी की दलदल में फँस गए हैं। वहाँ भी अनाचार फैल रहा है।

"देखो माला! देश तथा समाज की परिस्थितियों का मैंने भी कुछ अध्ययन किया है। मुझे तो यही समझ आया है कि इस समूचे देश में नास्तिकों की तूती बोल रही है। हमारे नेता यह कहते फिरते हैं कि वे धर्म-निरपेक्ष राज्य चाहते हैं। भला धर्मविहीन राज्य के भी कुछ अर्थ हैं!

"हमारी शिक्षा का आधार, हमारी योजनाओं का आधार तथा हमारी प्रत्येक बात का आधार भौतिकवाद है। परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति में स्वार्थ घुस आया है। उसे अपने से इतर कुछ सूझता ही नहीं। ऐसी परिस्थिति में यदि किसी प्रकार के कार्य की आवश्यकता है तो यही कि लोगों में धर्म के प्रति प्रवृत्ति, जो लुप्तप्राय हो गई है, उत्पन्न की जाए। लोगों में यह विश्वास उत्पन्न किया जाए कि उनमें एक आत्मा नाम की वस्तु है, जो कर्मों के फल का भोक्ता है और उनके बुरे कर्मों का फल उनको मिलेगा।

"मनुष्य जब तक यह नहीं मानता कि एक शक्ति ऐसी है जो उनको प्रत्येक स्थान पर, उनके प्रत्येक कर्म को देखती है और उनके कर्मों का फल देती है तथा यह फल उनको जन्म-मरण के बन्धन में बाँधता है, तब तक उनको कितनी ही शिक्षा मिल जाए, कितनी ही पंचवर्षीय योजनाएँ चल जाएँ, उनका जीवन मान-दण्ड कितना ही उठ जाए, वे पतन के गर्त में ही गिरते जाएँगे, उठेंगे नहीं—उठ सकेंगे भी नहीं।"

इस बात को तो माला ने भी अनुभव किया था। उसने देखा था कि पिछले चुनावों को जीतने के लिए प्रत्याशियों ने लोगों को रिश्वत दी थी, पार्टियाँ दी थीं तथा वोट खरीदे थे। संसदीय सीट के लिए कहीं-कहीं तो प्रत्याशियों ने लाखों बहा दिये थे। भला ऐसे प्रत्याशी देश के कर्णधार बनकर देश का क्या भला कर सकेंगे ?

फिर उसको यह भी पता था कि स्कूल-कॉलिजों में विद्यार्थियों को लिखना-पढ़ना सिखाया जाता है तथा उनके निर्वाचित विषय में उनको ज्ञान कराया जाता है, परन्तु उनमें अनुशासन, नैतिक उत्थान तथा धर्म-कर्म की भावना उत्पन्न नहीं की जाती। इसके परिणामस्वरूप विद्यार्थियों में उच्छृङ्खलता बढ़ती जाती है। भला ऐसे उछृङ्खल विद्यार्थियों के हाथ देश का भविष्य क्या उज्ज्वल होगा ?

इस दिन की वार्तालाप ने माला के मन में अपने कार्य के प्रति सन्देह उत्पन्न कर दिया था।

सरोज बरेली के एक दुकानदार की लड़की थी। उसके पिता दीनदयाल कपड़े का धन्धा करते थे। माला को विस्मय होता था कि उसकी यह धारणा कि भोली-भाली जनता को बड़ी-बड़ी योजनाओं की रूपरेखा समझाकर, उनके विकास और उत्थान का दावा करना कोरी बकवास के अतिरिक्त कुछ नहीं, किस आधार पर बनी है ? काफी देर तक भिन्न-भिन्न विषयों पर सरोज से बातें करने पर माला को समझ आ गई कि यह संसार वास्तव में वैसा नहीं जैसा प्रतीत होता है। सरोज की बातें उसको सत्य प्रतीत होती थीं।

सोहन के परिवार का उदाहरण उसके सम्मुख था। जब बाप काम-वासना के वशीभूत हो अपने इकलौते बेटे से ऐसा व्यवहार कर सकता है, तो अन्य लोग मूर्ख व्यक्तियों का शोषण यदि करें तो आश्चर्य करने की क्या बात है !

माला को अपने विचारों में तल्लीन देख सरोज ने कहा, "मेरा दृढ़ विश्वास है कि मानव को अपने मानसिक तथा बौद्धिक विकास की ओर

ध्यान देना चाहिए। जब तक मन के भीतर प्रकाश नहीं होगा अर्थात् विचार स्पष्ट न हों, दूसरों पर लादने का किसी को अधिकार नहीं है।"

माला को अब अपने कार्यक्रम में छिद्र दिखाई देने लगे। वह सोचती थी, क्या उसको समाज के हेतु कुछ करना चाहिए या सरोज की तरह इस वितण्डावाद से अलग रहे? वह निर्णय नहीं कर सकी। मन की प्रबल इच्छा को एकदम दबाना कठिन था।

आठ ○ ○ ○

विवाह के एक मास पश्चात् सरोज को लेकर विनोद की माँ दिल्ली आ गई। इन दिनों विनोद को अस्पताल की ओर से एक बँगला मिल गया था।

विनोद को अस्पताल में बहुत काम रहता था। दिन-भर में कई छोटे-बड़े ऑपरेशन करने पड़ते थे। वह एक सफल सर्जन के रूप में विख्यात होने लगा था। अनेक रोगी पहले उसके घर जाते और अस्पताल में प्रवेश पाने के लिए उससे विनयपूर्वक प्रार्थना करते। विनोद तो सर्जिकल विभाग का इंचार्ज था। उसके पास केवल ऑपरेशन के केस ही आते थे। इस पर भी लोग उससे सहायता लेने आते थे।

विनोद को पहले विदित नहीं था कि डाक्टर लोग रोगियों से रिश्वत लेते हैं। उसके अपने सहयोगी तथा सहायक डॉक्टरों पर उसे सन्देह हुआ। अस्पताल में अनाचार फैलते देख उसको दुख हुआ। वह डॉक्टर-वर्ग से इस पतन की आशा नहीं करता था। इस पर भी वह अपना कार्य ईमानदारी से करता रहा। देश की कोटि-कोटि जनता से अपने कर्तव्य का पालन कराना उसका कार्य नहीं था। जब वह भारत सरकार के उच्च

अधिकारियों द्वारा घूस लेने के समाचार सुनता तो मन में विचार करता अँग्रेजों को हमारे नेता अत्याचारी, अन्यायकर्त्ता तथा भारत के धन का हरण करने वाले लुटेरे इत्यादि उपाधियों से पुकारा करते थे। किन्तु शक्ति इनके हाथ में आने से इनकी अपनी कार्य-पद्धति इतनी दोषपूर्ण बन गई है कि सहस्रों रुपये मासिक वेतन पाने वाले अधिकारी भी धन-लिप्सा में फँस अपने देश से ही द्रोह कर रहे हैं। ऐसी घटनाएँ होना विकास की ओर नहीं, पतन की ओर अग्रसर होना है।

डॉ० विनोद यह अनर्थ होते देख अपने सहयोगियों के प्रति कठोर होता जा रहा था, यद्यपि उसका व्यवहार रोगियों से अधिक नम्र तथा सहानुभूतिपूर्वक था। रोगी दिनों-दिन बढ़ते जाते थे। अस्पतालों में स्थान की कमी थी। सरकार नये अस्पतालों की व्यवस्था कर रही थी। परन्तु रोगियों की संख्या कम होने में ही नहीं आती थी। विनोद दिन-भर काम कर थक जाता था। जब घर पहुँचता तो रोगी घर पर आये हुए होते।

विनोद को यह पसन्द नहीं था। रोगी प्रायः इसलिए आते कि वे डॉक्टर को घर पर फीस देकर अस्पताल में विशेष सुविधा प्राप्त कर सकें। परन्तु इस दृष्टि से विनोद ने उनसे मिलना बन्द कर दिया। जहाँ तक रोगियों को देखने तथा उन्हें राय देने का प्रश्न था, वह दे देता था, परन्तु अस्पताल में सुविधा देने के प्रश्न पर वह उनको विदा दे देता था।

ज्यों-ज्यों लोगों को पता चलता गया कि डॉक्टर विनोद घर पर भी फीस नहीं लेता, उसके मकान पर आने वाले लोगों की संख्या में कमी होने लगी। विनोद इससे प्रसन्न था। सायंकाल का समय वह चाहता था कि वह निजी प्रयोग में लाए। वह थका-माँदा घर पहुँचता था और सरोज एक मुस्कराहट लिये उसकी प्रतीक्षा में होती। ऐसे समय में किसी रोगी की उपस्थिति, वह भी अस्पताल-सम्बन्धी बातों के लिए उसे पसन्द नहीं थी।

परिणाम यह हुआ कि विनोद और सरोज के जीवन में बहार आई और दोनों परस्पर घुल-मिल गये।

शाम को चायादि लेकर दोनों घूमने निकल जाते। घूमकर आते तो सरोज भोजन के प्रबन्ध में लग जाती और विनोद स्वाध्याय में। रात को भोजन होता और फिर दोनों परस्पर बातों में व्यस्त रहते।

सोहन की नियुक्ति देहरादून में हो गई थी। वहाँ से उसके पत्र विनोद को आते रहते थे। वह अपनी नौकरी से सन्तुष्ट प्रतीत होता था।

विनोद सोहन के पत्र सरोज को पढ़ने के लिए दिया करता था। एक दिन एक पत्र पढ़ कर सरोज ने अपने पति से कहा, "आपका मित्र तो उन्माद का रोगी प्रतीत होता है।"

विनोद ने पूछा, "कैसे जान पाई हो?"

"उसकी भाषा ही ऐसी है। वह अति चंचल वृत्ति का युवक प्रतीत होता है। अस्थिर चित्त व्यक्ति किसी इच्छा के पूर्ण न होने पर उन्मादी बन जाते हैं।"

विनोद मुस्करा दिया। उसने भी पत्र को ध्यान से पढ़ा था। सोहन ने लिखा था—

"प्रिय विनोद!

"तुम भली भाँति जानते हो कि मेरा काम ही ऐसा है कि अति व्यस्त जीवन व्यतीत करना पड़ता था। आज एक मास के पश्चात् कुछ समय मिला और तुम्हारे पत्र का उत्तर दे रहा हूँ।

"पढ़कर प्रसन्नता हुई कि भाभी तुम्हारे पास आ गई है। मैं आपको एक से दो होने के लिए पुनः अपनी हार्दिक बधाई भेजता हूँ। आशा है आप दोनों अति प्रसन्न होंगे।

"मैं जब दिल्ली में था तो भी तुम्हें विवाह के पश्चात् अकेला रहते देख विस्मय करता था। अब भाभी के आ जाने से तुम्हारी वियोग की घड़ियाँ समाप्त हो गयी हैं।

"एक मास से ऊपर हो गया है, पिताजी का पत्र नहीं आया। एक सप्ताह पहले मैंने नई माँ को पिताजी की कुशल-क्षेम जानने के लिए पत्र लिखा था। परन्तु उत्तर देने के स्थान वह स्वयं यहाँ पहुँच गई है।

मुझे ऐसी आशा नहीं थी। वह सीधी मेरे कार्यालय में, बिना सूचना दिये पहुँची और मैं उसको लेकर तत्काल अपने निवास-स्थान पर चला आया।

"उससे मैंने पिताजी की कुशल-क्षेम पूछी तो वह कहने लगी कि वह आजकल उनसे भी नाराज़ प्रतीत होते हैं। मेरे यहाँ चले आने पर भी वह पिताजी से मुझे अपनी अनुसंधानशाला के लिए पूँजी लगाने पर बल देती रही। कदाचित उनको यह सिफ़ारिश रुचिकर नहीं लगी। पश्चात् उसने बताया कि मेरा पत्र मिलने पर एक शुभ सूचना सुनाने वह स्वयं यहाँ चली आई है। मैंने जब पूछा तो वह मेरे कान में कहने लगी, 'सोहन! तुम्हारी बहन आने वाली है। तुमने मुझसे कहा था कि मेरा आदर तब कर सकोगे, जब परिवार में इस कमी की पूर्ति के लिए मैं यत्न करूँगी।' मैंने पूछ लिया, 'पिताजी इस सूचना से प्रसन्न नहीं हुए क्या?' माँ का उत्तर था—'उन्हें विदित नहीं। मैंने स्वयं बताना उचित नहीं समझा। जब वह स्वयं प्रसन्न होकर मेरा हाल पूछेंगे तो बता दूँगी। तुम्हारा पत्र मिलने पर मैं घर पर टिक कर नहीं बैठ सकी और सीधी यहाँ चली आई हूँ।'

"विनोद! ये बातें सुनकर मैं कुछ निर्णय न कर सका कि माँ से क्या कहूँ। मुझे उसके यहाँ रहते हुए लज्जा लगती है। किसी के पूछने पर मैं क्या उत्तर दूँगा? लोग विश्वास भी करेंगे अथवा नहीं। यदि मैं भी तुम्हारी तरह विवाहित होता तो इतनी कठिनाई न होती।

'एक बात और अति विस्मयजनक है। मेरे पूछने पर माँ ने बताया है कि वह पिताजी से मिलकर भी नहीं आई। नौकर से कह आई है कि कपूर साहब को बता देना। मैं उससे कह नहीं सकता कि वह यहाँ से चली जाये और न ही मैं उसकी उपस्थिति पसन्द करता हूँ। तुम, इस उलझन से निकलने के लिए, मुझको अपनी सम्मति वापसी डाक से लिखो।

"भाभीजी को नमस्ते।

—सोहन।"

विनोद ने सरोज से विचार-विमर्श करने के लिए उसे पत्र पढ़ने को दिया था। किन्तु उसका सोहन को उन्मादी बताना कहाँ तक ठीक है, विनोद कुछ समझ न सका। सरोज सोहन का पत्र पढ़कर समझ गई थी कि यह वैज्ञानिक हीन भावना रखता है। मन की अस्थिरता ही कारण बनी हुई थी। अतएव उसने मुस्कराकर सोहन को उन्मादी घोषित कर दिया था।

उसने पुनः कहा, "आपका मित्र अपनी युवा विमाता के सम्मुख अपने मनोद्गारों को स्थिर रखने में स्वयं को अशक्त पाता है और उसकी माँ अपनी सम्मोहिनी शक्ति से उसके द्वारा बहुत बड़ी योजना, जो वह अपने मस्तिष्क में रखती है, पूर्ण करना चाहती है।"

विनोद यह भविष्यवाणी सुनकर विस्मय-भरी दृष्टि से सरोज के मुख पर देखने लगा। वह समझ न सका कि सरोज का अनुमान कहाँ तक ठीक है। उसने सरोज से पूछा, "इस भविष्यवाणी में क्या युक्ति है?"

"देखिए, श्रीमान्जी! सोहन के मस्तिष्क में यह बात समाई हुई थी कि वह अपने वैज्ञानिक अनुसंधान से देश का कुछ भला करने जा रहा है। जब बाप ने पूँजी लगाने से इन्कार कर दिया तो उसने आजीविका चलाने के लिए नौकरी का सहारा लिया। पिता के स्थान एक चरित्रहीन स्त्री उसकी पथ-प्रदर्शक प्रतीत होती है। अब उसको लज्जा लगती है उसे अपनी विमाता कहते हुए। जिस व्यक्ति की वह सहवासिनी है, वह तो जानता तक नहीं कि वह गर्भवती है और सोहन को वह यह सूचना देने देहरादून आ पहुँची है। ये सब बातें एक बुद्धिशील व्यक्ति के मन में सन्देह ही उत्पन्न करेंगी।

"सोहन एक वैज्ञानिक तथा आपका मित्र सही; परन्तु उसके विचारों से ऐसा प्रतीत होता है कि मुमताज़ के अधिक सम्पर्क में रहा तो उसका विनाश अवश्यंभावी है।"

विनोद का ध्यान इस ओर नहीं गया था। वह तो अभी तक यही समझ रहा था कि सोहन उसकी बहन माला में रुचि रखता है। यदि गलत

उसको अपना जीवन-साथी बनाने की तनिक भी इच्छुक होती तो वह पिताजी को प्रेरणा देकर उनका विवाह करा देता। अब सरोज के मुख से सोहन के पतन की सम्भावना की बात सुन वह चुप हो गया। वह जानता था कि सरोज बिना सोचे-समझे इस प्रकार की बातें कभी नहीं करती। इस पर भी उसके मन में बात स्पष्ट न हो सकी कि सरोज क्यों उसके मित्र के प्रति उससे विपरीत धारणा रखती है। उसने कहा, "मानव को समझना बहुत कठिन है। किस समय उसके भीतर सतोगुण की वृद्धि होगी, उसकी आत्मा अधिक विकसित हो जायेगी अथवा तमोगुण के अधीन वह पतन की ओर अग्रसर होगा, समय से पूर्व अनुमान लगा सकना सरल नहीं है। अतः मैं तुम्हारी इस भविष्यवाणी से सहमत नहीं हूँ सरोज।"

"मैंने विवाह के पश्चात् ही उसको पहली बार देखा है। मुख से भी वह प्रबल मन का स्वामी नहीं मालूम पड़ता और न ही एक सच्चा भारतीय वैज्ञानिक, जो प्रकृति के रहस्यों को समझने पर भी सब अन्वेषणों को उस सर्वशक्तिमान परमात्मा की कृपा समझे, प्रतीत होता है। अतः उसके लिए परिस्थितियों का दास बन जाना आश्चर्य की बात नहीं होगी"

"तो उसको क्या उत्तर दूँ?" विनोद ने आखिर पूछ लिया।

"उत्तर देना व्यर्थ है। उसको स्वयं सोचना चाहिए। आपका पत्र पहुँचने से पहले ही जो कुछ होना होगा, हो जायेगा।"

हुआ भी वही, जिस ओर सरोज ने संकेत किया था। सोहन दिल्ली आ गया। उसने स्टेशन से विनोद को अस्पताल में फोन किया और स्वयं स्टेशन पर नहा-धोकर नाश्ता करने के पश्चात् उसके घर जा पहुँचा। तब तक विनोद घर पहुँच चुका था। जब सोहन उसके घर पहुँचा तो वह सरोज से बातें कर रहा था। सरोज कह रही थी, "देखा, मैंने कहा था न कि पत्र लिखना निरर्थक है।"

सोहन आया तो विनोद ने पूछा, "मुमताज़ को पहुँचाने आये हो?"

"नहीं। उसके देहरादून पहुँचने की सूचना पिताजी को देने आया हूँ।"

"भाई, यह भी खूब रही ! पिताजी की कुशल-क्षेम स्वयं बताने मुमताज़ वहाँ जा धमकी और अब तुम उसे वहाँ छोड़ पिताजी को बताने आये हो कि वह कुशलपूर्वक है। मामला क्या है ?"

"मैं वहाँ से भाग आया हूँ विनोद !"

इस पर विनोद और सरोज खिलखिलाकर हँस पड़े। अब विनोद को सोहन में उन्माद के कुछ लक्षण दृष्टिगोचर होने लगे। उसने पूछा, "क्या नौकरी छोड़ आये हो ?"

सोहन इस प्रश्न से कुछ झेंप गया। इसका अर्थ तो यह था कि पूर्ण कथा सुनानी पड़ेगी। अतः उसने सरोज और विनोद के मुख पर देखते हुए पूछा, "क्या भाभी मुमताज़ के विषय में पहले कुछ जानती हैं ?"

"हाँ, मैंने सब-कुछ बता दिया है उसको।"

अब सोहन को आगे कुछ कहने में कठिनाई नहीं हुई। इस पर भी सरोज ने पूछ लिया, "भाई साहब ! वैसे तो ये आपके पत्र मुझको पढ़ने के लिए देते थे। इस पर भी यदि मेरी उपस्थिति पसन्द न करते हों तो मैं दूसरे कमरे में चली जाती हूँ ?"

"नहीं भाभी ! मैं आपसे कुछ छिपाकर रखना नहीं चाहता। मैंने तो इसलिए पूछा था कि आपको पूर्ण बात समझने में कठिनाई न हो।"

सरोज वहाँ बैठी नहीं। उठकर रसोईघर में चली गई। उसको सोहन की बातों में विशेष रुचि नहीं थी। सोहन कह रहा था, "जब मैंने मुमताज़ से पूछा कि क्या वह मुझे केवल यही सूचना देने यहाँ पधारी है कि मेरा भाई अथवा बहन आने वाली है या आने का अन्य कोई प्रयोजन भी है तो वह कहने लगी—दिल्ली से मन उचाट हो गया। अतः मेरे पत्र ने उसे देहरादून जाने के लिए तैयार कर दिया।

"मुमताज़ का एक सप्ताह-भर देहरादून में रहने का कार्यक्रम है। एक रात तो किसी प्रकार कट गई। रात के भोजन के समय उसने शराब पीने की इच्छा प्रकट की तो मैंने कह दिया कि मैं तो किसी शराब की दुकान पर आज तक चढ़ा नहीं। इस पर वह चुप हो गई और स्वयं बाज़ार की

ओर चल पड़ी। रात्रि के दस बजे वह लौटी। भोजन ठण्डा हो गया था।

"वह आते ही अपने बिस्तर पर लेट गई। मैंने समझा वह नशे में है, इसलिए कोई बात नहीं की। मैं भी अपने पलंग पर लेट, सोने का यत्न करने लगा।

"न जाने मुझको नींद क्यों नहीं आई। भाँति-भाँति के विचार मेरे मस्तिष्क में उठ रहे थे। एक गर्भिणी का शराब पीकर सोना मुझको विचित्र लग रहा था। मैं करवटें बदलता रहा।

"किस समय आँख लगी, मैं नहीं जानता। करवट बदली तो ऐसे लगा कि कोई मेरे पलंग पर बैठा है। मैं घबराकर उठ बैठा। मुमताज़ वहाँ बैठी थी। मैंने जब उससे कारण पूछा तो उठकर वह अपने बिस्तर पर चली गई। मैंने समझा उसको कोई कष्ट है। मैं उसके पास आ गया। वह मेरी ओर घूमकर देखने लगी और अपनी बाँहें मेरे गले में डाल कहने लगी, 'तुम बहुत अच्छे हो, सोहन! मेरा कितना ख़याल रखते हो!'

"इतना कह वह मुस्कराती हुई बिस्तर पर जा लेटी। मैं यही समझ पाया कि वह अभी शराब के नशे में मस्त है। उसके मुख से शराब की गन्ध आ रही थी। पुनः अपने बिस्तर पर लेटे मुझको कुछ क्षण ही बीते थे कि उसकी सिसकियाँ सुनाई पड़ीं।

"मुझको विवश हो उसके कमरे में जाना पड़ा। उससे रोने का कारण पूछा तो वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगी। उस समय रात्रि के तीन बजे थे। मैं दुविधा में पड़ा था कि क्या करूँ। कुछ समय तक उसके पलंग के पास खड़ा विचार करता रहा।

"एकाएक मुमताज़ ने मुझे आलिंगन कर मेरा मुख चूम लिया। मैं उसको पीछे धकेलता हुआ दूर खड़ा हो गया। वह घायल हिरणी की भाँति मुझे निहार रही थी। बिना कुछ बोले मैं वहाँ से चला आया। मुमताज़ पुनः मेरे पलँग पर आकर बैठ गई और मेरा हाथ अपने हाथों में लेती हुई बोली, 'तुम मेरे साथ मसूरी चलोगे सोहन?'

'नहीं। तुम्हें दिल्ली लौट जाना चाहिए।' मेरा उत्तर था।

'क्या तुम इतना भी नहीं समझते कि मैं यहाँ क्यों आई हूँ ?'

'अब विशेष रूप से समझ में आने लगा है।'

'परन्तु एक बात नहीं समझे।'

'क्या ?'

'मुझे तुमसे मुहब्बत हो गई है।'

"मैं इसका क्या उत्तर देता ? बात आगे नहीं हो सकी। मैं पुस्तक निकाल पढ़ने में मग्न हो गया। दिन निकलने पर नहा-धोकर मैं तैयार हो गया और मुमताज़ से बोला, 'मैं दिल्ली जा रहा हूँ। तुम भी तैयार हो जाओ।' इस पर उसने कह दिया कि वह अभी दिल्ली लौटने का इरादा नहीं रखती। अतएव मैं अकेला चला आया हूँ, पिताजी को इस नवीन परिस्थिति का ज्ञान कराने।"

विनोद को पूर्ण घटना सुनकर जहाँ विस्मय हुआ, वहाँ अपनी जीवन-संगिनी की भविष्यवाणी को सत्य होते देख, गर्व भी हुआ। विस्मय उसको सोहन पर हो रहा था और वह मन में प्रसन्न था कि वह सरोज से हार गया था। सोहन की बातों का कुछ उत्तर नहीं था, अतः वह मौन ही बैठा रहा।

सरोज ने भोजन मेज़ पर लगा दिया। सब भोजन करने लगे। सोहन बहुत उदास और खिन्न हृदय-सा प्रतीत होता था।

भोजनोपरान्त सोहन विदा होने लगा तो विनोद ने पूछा, "अब घर जाओगे या फ़रीदाबाद ?"

"तुम मिलोगे न ?" सोहन ने उल्टा प्रश्न कर दिया।

"यत्न करूँगा।"

सोहन फीकी मुस्कराहट अपने अधरों पर लाने का यत्न करने लगा। पश्चात् हाथ मिला चला गया।

वास्तव में वह डाँवाडोल अवस्था में था। वह कुछ निश्चय नहीं कर पाया था कि अपने पिता से मिले अथवा देहरादून वापस लौट जाये। विनोद के घर से वह अन्यमनस्क-सा पैदल ही अज्ञात दिशा को चला जा

रहा था। इस समय उसकी आँखों के सम्मुख वह दृश्य घूमने लगा, जब मुमताज ने उसे आलिंगन कर अपने अधरों से उसका मुख चूमा था। विचार आते ही विशेष प्रकार की गुदगुदी उसके मन में होने लगी। देहरादून में उसने संकोच और मानसिक दुर्बलता की सीमा को पार नहीं किया था। उसने धैर्य से काम लिया था। किन्तु अब उसे ऐसा लगा कि उसमें विवेक का लोप हो रहा है। उसका धैर्य छूट रहा है।

विनोद ने उसके व्यवहार का समर्थन नहीं किया। सरोज उठकर चली गई थी। इन सब बातों ने मिलकर उसके चित्त को खिन्न कर दिया था। वह विचार करने लगा, क्या उसने उतावली में दिल्ली आकर भूल की है? उसे अपना यह रहस्य किसी को नहीं बताना चाहिए था।

इस प्रकार सोहन के मन में द्वन्द्व चल रहा था। वह सोच रहा था कि पिताजी से भी बताने में कुछ लाभ न होगा। यदि वह यहाँ न आया होता तो इस समय मुमताज के साथ मसूरी की सैर कर रहा होता। यहाँ गर्मी में अपना समय व्यर्थ गँवा रहा है। इस पर भी वह अपने भविष्य के विषय में मनन करता था। बाप ने उसको, तिरस्कार कर त्याग दिया था। अब मुमताज़ के सम्मुख समर्पण करने से वह एक दिन गर्त में गिर सकता है। उसका मन चंचल हो रहा था। मुमताज़ का रूप-लावण्य उसके हृदय में गुदगुदी उत्पन्न कर रहा था। वह रूप उसने पहले कभी नहीं देखा था, और न ही इतने समीप से देखा था उस मांसल शरीर को। उसकी बुद्धि विद्रोह कर रही थी। वह विचार करता—जब बाप वृद्धावस्था में एक युवा स्त्री रख सकता है तो एक युवक का किसी अद्वितीय सुन्दरी के मोह में फँस जाना स्वाभाविक है।

जब मुमताज स्वयं उस पर कृपादृष्टि रखती है तो वह क्या कर सकता है! उसको स्मरण हो आया कि वह माला के प्रेम का पात्र बनने का इच्छुक था, किन्तु उसने उसको भाई बनाने की इच्छा प्रकट की। वह अपने मन को तैयार नहीं कर सका। अब माला उससे दूर हो गई प्रतीत होती थी।

ठीक इसी प्रकार मुमताज़ माँ के स्थान उसकी सहवासिनी बनने की इच्छुक थी और वह घबराकर वहाँ से भाग आया था। अपने पिता को वह क्या बतायेगा? उसको यह बात अनर्गल-सी प्रतीत हुई। उसने निश्चय कर लिया कि वह अपने पिता से मिले बिना देहरादून लौट जायेगा। उसे कोई भी अपना हितैषी दिखाई नहीं दिया। मित्र की दृष्टि भी बदली हुई मालूम देती थी। केवल एक मुमताज़ थी जो उसे क्षणिक आनन्द की अनुभूति करा सकी। वह उसको भी अकेला छोड़ आया।

मन में चल रहे द्वन्द्व का परिणाम सोहन को भौतिक सुख की ओर ले गया। वास्तविक आनन्द से दूर भोग-विलास की लिप्सा में फँस उसकी बुद्धि भ्रमात्मक हो गई। मुमताज़ के सौन्दर्य का सम्मोहन बहुत प्रबल सिद्ध हुआ।

नौ ...

सोहन के चले जाने के पश्चात् विनोद को ऐसा भास हुआ कि एक अन्य भारतीय युवक पथ-भ्रष्ट हो गया है। जिस समय सोहन उसको आपबीती सुना रहा था तो विनोद को ऐसा लगा कि वह कुछ कल्पना से भी काम ले रहा है। अब उसे सरोज की बातों में कुछ सार प्रतीत हुआ, अन्यथा सोहन देहरादून से दिल्ली भागकर न आता।

उसके विचार में यह बहुत ही साधारण घटना थी। सोहन यदि थोड़ी-सी भी विवेक-बुद्धि रखता तो किसी को उसके चरित्र पर सन्देह न होता। इस पर भी अपने वैज्ञानिक अन्वेषणों द्वारा देश की कोटि-कोटि जनता का कल्याण करने की इच्छा रखने वाले युवक का इतना नैतिक पतन विनोद के लिए विस्मयजनक था।

अपने दिल्ली के समाज में तो वह नित्य ऐसी घटनाएँ होते देखता और सुनता था। शनैः-शनैः रिश्वतखोरी, बलात्कार और अन्य अधर्म की बातें इतनी अधिक होने लगी थीं कि कोई पहले की भाँति आश्चर्यचकित नहीं होता था।

निर्वाचन के दिनों में भी यही कुछ सुनने में आया। मत धन से खरीदे गये। पैसे के प्रलोभन में फँस लोगों ने उस पार्टी को ही मतदान किया जहाँ से पैसे मिले। ऐसे लोग बहुत कम थे, जिन्होंने मत का उचित प्रयोग किया। अनाचार फैलाने में पढ़े-लिखे कर्णधारों ने अपने चरित्र के प्रमाण दिए। अनैतिकता को प्रोत्साहन मिल रहा था।

नगर के दुकानदारों का भी यही हाल था। हर वस्तु में मिलावट थी। तोल के ढँग भी ऐसे ही थे। विनोद अनुभव करता था कि जिस दुकानदार ने दुकान पर भगवान् कृष्ण, गुरु नानक अथवा राम का चित्र टाँगा हुआ था, स्वयं दुर्बल-काय, वृद्धावस्था में पहुँचा हुआ धनोपार्जन के लोभ में झूठ का सहारा लेता था। सौदा तोलते समय जिसके हाथ काँपते थे और गर्दन जिसकी वृद्धावस्था के कारण हिलती थी, वह भी कम तोलकर कुछ टकों का लाभ कमाने में संकोच नहीं करता था।

यह अवस्था थी नये स्वतन्त्र भारत के समाज की। हवा ही ऐसी चल रही थी कि भगवान् का भय देशवासियों के मन से लुप्त होता जाता था। एक बात तो सब मानते ही थे कि मृत्यु अवश्यम्भावी है। अतः जितना भी भौतिक सुख प्राप्त हो सके अथवा इस जीवन में मरने से पहले भोग सकें, वही जीवन का आधार है, वही आनन्द है।

अपने अस्पताल में विनोद देखता था कि रोगी तो उस डॉक्टर को ही भगवान् मानते थे जो उन्हें रोग से मुक्त करा दे। इस पर भी कई डॉक्टर रिश्वतखोरी के प्रलोभन से अछूते नहीं थे। रोगी भी अपने सुख और आराम के लिए डॉक्टरों के बँगलों पर अतिरिक्त शुल्क दे जाते थे। विनोद के विचारानुसार यह भी समाज में फैले अनाचार का एक अंग था।

ऐसी बातों से विनोद का मन नौकरी से उचाट होने लगा। एक

दिन उसने सरोज से कहा, "प्रिये ! जब तुम-जैसी स्त्रियाँ भारत में अब भी हैं तो क्यों धर्म का लोप हो रहा है ?"

"आपको भ्रम है कि माँ ही अपने पुत्र को ऐसा नागरिक बना रही है। यह बात अब पुरानी समझी जाती है कि माताएँ यदि सन्तान का ठीक पथ-प्रदर्शन करें तो सन्तान धर्म-परायण बनती है।

"नये भारत की नींव ही ऐसी डाली गई है। बहुत-कुछ सरकार अपने अधीन करने का यत्न करने लगी है। शिक्षा में से धर्म का नाम उड़ गया है। समाजवाद की तूती बोल रही है और समाजवाद के नाम पर समाज विरोधी विचारधारा पनप रही है।

"जनता का भी क्या दोष है ? परमात्मा को वे क्यों मानें ? सत्य क्यों बोलें ? अच्छे कर्म उन्हें क्यों करने चाहिएँ ?"

" सलिए कि अच्छे कर्मों के करने से ही बौद्धिक विकास सम्भव है और मानसिक तथा बौद्धिक विकास के बिना वास्तविक सुख की उपलब्धि नहीं हो सकती।" विनोद का कहना था।

"आप ऐसा समझते हैं न ! परन्तु धर्म क्या है ? वास्तविक सुख क्या है ? यह सब तो हमें पढ़ाया नहीं जाता।"

"तुम्हें किसने पढ़ाया है ?"

"मेरी तो बुद्धि विद्रोह करती रहती है। और कई वर्षों से ऐसा होने से मेरी एक निश्चित धारणा बन गई है। किन्तु सबकी तो ऐसी अवस्था नहीं है।"

"वही तो मैं कहता हूँ कि ऐसा करने के हेतु जनता में कोई रचनात्मक तथा जिससे प्रेरणा मिल सके, ऐसा कुछ करने की आवश्यकता है।"

"पर कुछ किया जाये, तब न ! यहाँ तो सब-कुछ धर्म के विरुद्ध हो रहा है। ऐसी अवस्था में नैतिक पतन का प्रादुर्भाव तो होगा ही।"

"फिर क्या किया जाये ? मेरा मन इस दूषित वातावरण से विक्षुब्ध हो गया है। डॉक्टर वर्ग में भी धन-लिप्सा के कारण अनैतिकता आ गई है। इसलिए मुझ जैसे व्यक्ति के लिए नौकरी करना भी कठिन हो गया

है।"

"देखिए, आप धीरज न छोड़िये। भगवान् जाने भविष्य में क्या होने वाला है। कदाचित् इससे भी अधिक विषम परिस्थितियों में से हमको गुज़रना पड़ेगा।"

विनोद मौन हो गया। उसको एक बात समझ आ गई कि जब चारों ओर भौतिकवाद का ही बोलबाला है, नास्तिक लोग अनर्गल बातें बना नव-निर्माण की योजनाएँ बना रहे हैं, तो यह स्वप्न निश्चित ही क्षण भंगुर है और एक दिन सब-कुछ स्वाहा हो जायेगा।

संसार के अन्य देशों में युद्ध की भाषा का प्रयोग हो रहा है। युद्ध के बिना पाप का नाश कठिन प्रतीत होता है। जब तक प्रवृत्ति नहीं बदलेगी, शान्ति असम्भव है। केवल भावुक बनने से तो काम बनने वाला नहीं है। जब तक लोग यह नहीं समझेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति कर्मफल को भोगता है, कर्म करना मानव का स्वभाव है, तब तक परमात्मा में निष्ठा नहीं होगी।

इस प्रकार सरोज के साथ रहते हुए विनोद का मस्तिष्क नई-नई बातें सोचता रहता था। सरोज उन दिनों महाभारत का अध्ययन कर रही थी, अतः उस काल में फैले दुराचार तथा अधर्म पर विवाद होता तो सरोज कह देती, "भगवान् कृष्ण ने युद्ध रोकने का बहुत यत्न किया था, परन्तु जब पाप बहुत बढ़ गया तो युद्ध अनिवार्य हो गया। तब उन्होंने भी रोकना उचित नहीं समझा। वह जानते थे कि विजय धर्म की ही होगी, इसलिए इतिहास से हमें पाठ सीखना चाहिए।

"यदि हम विश्व-युद्ध से बचना चाहते हैं तो इस बढ़ते हुए दुराचार को रोकने का यत्न करें और धर्म-परायण बनें।"

विनोद का घर सुख और आनन्द का प्रतिरूप था। रूप की राशि, लजीला लावण्य लिये सरोज सदा उसकी सेवा में उपस्थित रहती। उसकी वाणी में शाश्वत रस और हृदय में अपने स्वामी के प्रति निष्ठा थी।

कलावती भी दो मास से विनोद के पास दिल्ली में रह रही थी।

उसकी आँखों का ऑपरेशन होना था, अतः वह वहीं टिक गई थी। अब सरोज उसको रामायण पढ़कर सुनाती थी। अपनी पतोहू के-कोकिल कण्ठ से रामायण का पाठ सुन कलावती आत्म-विभोर हो उठती थी। प्रातःकाल स्नान आदि से निवृत्त हो, सरोज भागवत का पाठ करती। अतएव ऐसे वातावरण तथा आज्ञाकारी पतोहू को छोड़कर कलावती का मन बरेली लौट जाने को नहीं किया। ऑपरेशन तीन मास के पश्चात् होना था, तो भी वह अपने पुत्र तथा पुत्रवधू के पास रहती हुई प्रसन्न थी। माला भी इन दिनों दिल्ली आ गई थी।

बरेली में भगवतीप्रसाद अकेला था। चन्दू उसके घर पर ही रहता था। कलावती और माला की अनुपस्थिति में भोजन वह बनाता था। इधर कलावती पति के पास लौट जाने के स्थान विनोद द्वारा उसे लिखती रहती थी कि वह भी कुछ दिनों के लिए दिल्ली आ जाये। एक बार उसने माला से पत्र लिखवाकर स्वयं नीचे हस्ताक्षर कर दिये। उसने लिखा—

"यहाँ तो मैं ऐसा अनुभव करती हूँ जैसे भागीरथी के तट पर बैठी हूँ। आपने समस्त जीवन धन कमाने में लगा दिया। कुछ दिन के लिए यहाँ आकर भगवतभजन का भी आनन्द ले लो। सरोज को पुत्रवधू के रूप में पाकर तो मैं कृतकृत्य हो गई हूँ। उसको छोड़कर बरेली आने से जहाँ मैं उस साक्षात् सरस्वती से दूर हो जाऊँगी, वहाँ उस वास्तविक आनन्द से वंचित कर दी जाऊँगी, जिसकी खोज में मानव आदि-काल से लगा हुआ है। अतएव ऑपरेशन होने तक मैं यहाँ रहूँगी। यदि जीवित रही तो पुनः स्वस्थ होने पर बहू को लेकर ही बरेली लौटूँगी।"

भगवतीप्रसाद इच्छा रखते हुए भी दिल्ली नहीं जा सका। दुकान पर काम बहुत अधिक होता था और उसका एक विश्वस्त कर्मचारी बीमार पड़ गया था। वह दुकान अकेली छोड़कर नहीं जा सका। उसने अपनी विवशता कलावती को पत्र में लिख भेजी। उसी रात भोजन के समय सरोज ने पूछ लिया, "माँजी! पिताजी नहीं आ रहे क्या?"

"नहीं बहू ! उनका उत्तर आया है कि दुकान छोड़कर नहीं आ सकते। भाग्य की बात है। सारी आयु धन कमाने में लगे रहे। इतना नहीं हो सकता कि कुछ दिन के लिए अवकाश ग्रहण कर लें। मेरी इच्छा थी कि भागवत के पाठ में वे भी सम्मिलित होते।"

"माँजी ! हम स्त्रियों को तो कुछ काम है नहीं, इसलिए घर के काम के पश्चात् हम कुछ समय निकाल ही लेती हैं, किन्तु पिताजी दुकान छोड़कर आएँगे तो सब काम ठप हो जाएगा।" सरोज का कहना था।

"और किसी दिन यह जीवन-लीला ही ठप हो जाएगी तब···" कलावती आवेश में बोली।

इसका उत्तर किसी ने नहीं दिया। पश्चात् विनोद ने कलावती के ऑपरेशन की बात छेड़ दी। उसने बताया कि जब तक मोतियाबिन्द पूर्ण रूप से पक नहीं जाता, ऑपरेशन सम्भव नहीं। कम-से-कम चार मास पश्चात् ऑपरेशन कराना ठीक रहेगा। इस पर कलावती ने कहा, "बेटा ! मैं ऑपरेशन के पश्चात् जीवित रहूँ अथवा न रहूँ भगवान् जाने; इसलिए क्यों न पहले ही बहू के साथ तीर्थाटन कर आऊँ। मेरी यह प्रबल इच्छा है।"

"कहाँ जाना चाहती हो, माँ !"

"इच्छा तो बद्रीनाथ, केदारनाथ जाने की है।"

विनोद चुप हो गया। जुलाई मास का अन्त था। सरोज की इच्छा कश्मीर-भ्रमण की थी। विनोद और माला भी यही चाहते थे। इसलिए उसने तनिक विचार कर पूछा, "कश्मीर देखोगी, माँ !"

"वहाँ कोई तीर्थ है, बेटा ?"

"हाँ; अगले मास अमरनाथ-यात्रा आरम्भ होगी। माला और सरोज भी कश्मीर-भ्रमण की इच्छा रखती हैं। कश्मीर की सैर के साथ अमरनाथ-यात्रा का पुण्य भी मिल जाएगा।"

कलावती ने कोई आपत्ति नहीं उठाई। सारा कार्यक्रम कुछ घण्टों में ही बना दिया गया और विनोद ने अपने पिता को बरेली लिख दिया कि

वह भी साथ चलें। वहाँ से उत्तर आया—"आप लोग हो आइए। मैं नहीं जा सकता।"

इस निराशाजनक उत्तर से कलावती को दुःख हुआ। वह मन से चाहती थी कि उसका स्वामी उसके साथ चले। इस पर भी कार्यक्रम बन चुका था। वह जानती थी यदि वह अब इन्कार करेगी तो सरोज और विनोद भी नहीं जाएँगे उसको अकेली छोड़कर। अतएव निश्चित दिन सबने काश्मीर-भ्रमण के लिए पठानकोट की ओर प्रस्थान किया। वहाँ से श्रीनगर के लिए सड़क का मार्ग था।

श्रीनगर पहुँचकर आगे का कार्यक्रम बनने लगा। कुछ दिन पश्चात् वे बस से पहलगाम पहुँचे। श्रीनगर में डलझील में शिकारे की सैर का सबको बहुत आनन्द आया। मुग़ल गार्डन्ज़ का सौन्दर्य भी अनुपम था। शेष नगर तो पुराने ढंग का ज्यूँ का त्यूँ बना था, जिसकी गलियों में अत्यन्त गन्दगी थी।

पहलगाम पहुँचकर सबके हृदय प्रफुल्लित हो उठे। कितना आनन्द था इस भ्रमण में! कलावती को खेद था कि विनोद के पिता ने अपना हठ नहीं छोड़ा।

विनोद और सरोज हिमालय पर्वत की शोभा देख आत्म-विभोर हो उठे। अमरनाथ की चढ़ाई अति कठिन थी, तो भी विशेष थकान अनुभव नहीं होती थी। बीच-बीच में ठहरने के पड़ाव थे। विश्राम हो ही जाता था।

प्राकृतिक दृश्य अनुपम थे। विनोद सोचता—जिस भारत की भूमि पर इतना सौन्दर्य है, उसी देश की राजधानी तथा बड़े-बड़े नगरों में कितना अनर्थ होता है! परिवार के सब सदस्य यात्रा का आनन्द लेते तथा ऊँचे-ऊँचे पर्वतों के दृश्य देखते उत्साह से आगे बढ़े जा रहे थे। मार्ग में कल-कल करते स्वच्छ जल के चश्मों के दृश्य अति आकर्षक थे। वहाँ मानव, नगरों के व्यस्त जीवन से दूर प्रकृति की गोद में स्वयं को भूल-सा जाता है। गगनचुम्बी, हिमाच्छादित पर्वत की चोटियों का सौन्दर्य देखते ही बनता है। सबके मुख पर विशेष चमक थी, जो उनके मन में भगवान् के

लिए निष्ठा की परिचायक थी।

विनोद तो वहाँ पहुँचकर अपने दिल्ली के जीवन को प्रायः भूल-सा गया था। वह स्वयं को बहुत हलका अनुभव कर रहा था।

पहलगाम में वे टैंट लगवाकर कुछ दिन के लिए ठहरे थे। जिस दिन वहाँ से अमरनाथ की यात्रा के लिए प्रस्थान करना था, विनोद का परिवार उस दिन से तीन दिन पूर्व पहुँच गया था। अतः पहलगाम में वे तीन दिन भ्रमण करते रहे थे।

खच्चरों का प्रबन्ध कर चौथे दिन वे आगे बढ़े। प्रातः सात बजे के चले हुए वे दस बजे अगले पड़ाव चन्दनवाड़ी पहुँचे। वहाँ दोपहर का भोजन कर घण्टा-भर विश्राम करने के बाद वे आगे चले।

चन्दनवाड़ी से पिस्सू घाटी की लगभग डेढ़ मील की चढ़ाई बहुत ही कठिन थी। एकदम सीधा ऊपर को चढ़ना था। चीड़ के ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की शोभा वहाँ देख सबका मन प्रफुल्लित हो गया।

संध्या होने से पूर्व वे शेषनाग पहुँचे। रात्रि वहाँ व्यतीत करनी थी। शेषनाग में हरे रंग के पानी का बहुत बड़ा चश्मा है जो देखने वालों के मन को भौतिक जगत् से निकाल कर अतीव शान्ति और आनन्द प्रदान करता है।

वहाँ लगभग पच्चीस सहस्र यात्री एकत्रित थे। ठहरने के लिए छोटे-छोटे कमरे और टीन के छप्पर थे। सामने पहाड़ों पर हिमपात हुआ दिखाई पड़ता था। पास में बहते स्वच्छ जल के नाले का दृश्य भी अद्भुत था।

अगले दिन प्रातः सब यात्रियों ने अगले पड़ाव पंचतरणी की ओर प्रस्थान किया। पंचतरणी शेषनाग से लगभग आठ मील है। वहाँ से आगे खच्चर नहीं जा सकते। पैदल अमरनाथ की गुफा की ओर चढ़ाई चढ़नी पड़ती है।

रक्षाबंधन के दिन पूर्णिमा की रात को लोग दर्शन करने जाते हैं। अमरनाथ गुफा पंचतरणी से लगभग चार मील है।

गुफा बहुत बड़ी है। पहाड़ की कन्दरा में ऊपर से जल टपकता रहता है और पूर्णिमा के दिन तक उस जल से ही हिम का शिवलिंग-सा बन जाता है। सब लोग उस निश्चित दिन शिवलिंग के दर्शन करने जाते हैं। रात्रि को ठहरने का वहाँ कोई प्रबन्ध नहीं है। दर्शन करने के पश्चात् कुछ देर पत्थरों पर प्रपात के समीप विश्राम कर लोग लौट आते हैं।

विनोद और सरोज उस गुफा का सौन्दर्य देख चकित रह गए। पुजारी से उन्हें विदित हुआ कि इस गुफा की खोज एक मुसलमान गड़रिए ने की थी। उसके उत्तराधिकारी को अभी भी जम्मू-कश्मीर सरकार द्वारा हर वर्ष कुछ रुपया सहायतार्थ मिलता है। एक-दो मास ही इस तीर्थ की शोभा बनी रहती है। पश्चात् अमरनाथ का मार्ग बन्द हो जाता है। वास्तव में यात्रा का निश्चित दिन रक्षाबंधन की पूर्णिमा का दिन है।

प्राचीन कवियों ने कश्मीर को स्वर्ग कहा है। इस बात का आभास विनोद को इस यात्रा से हुआ। श्रीनगर में तो उसका मन उदास हो गया था। पहला प्रभाव उसके मन पर अच्छा नहीं हुआ था—कश्मीर की भूमि का। वहाँ भी अनेक दर्शनीय स्थान तो थे परन्तु अमरनाथ की यात्रा में तो वह यह भी भूल गया कि वह दिल्ली जैसे व्यस्त नगर में रहता है। पहलगाम वापस लौटते हुए उसने सरोज से कहा, "कितना आनन्द है इस पहाड़ी स्थान पर ! परन्तु यहाँ लोग भ्रमण करने आते हैं। स्थायी रूप से यहाँ रह नहीं सकते।"

"यह भी अच्छा है। यदि यहाँ भी दिल्ली की तरह जन-समूह एकत्रित हो जाये तो हर प्रकार का अनाचार फैलने लगे। अब तो व्यस्त नगरों से लोग यहाँ मन बहलाने चले आते हैं, इसलिए यात्रा का कुछ महत्त्व भी है। हमारे लिए भी यह यात्रा स्मरणीय रहेगी।"

कलावती तो इस यात्रा से अपना जीवन अब सफल हुआ समझने लगी थी। सब भिन्न-भिन्न स्थानों का भ्रमण करते हुए एक मास के पश्चात् बरेली लौट गए।

बरेली पहुँचने पर जब कलावती ने विनोद के पिता के स्वास्थ्य की

आरा अवस्था देखी तो उसने अपना कार्यक्रम बदल दिया। विनोद और सरोज दिल्ली लौट गए। माला ने ग्रामों में घूमने का अपना कार्यक्रम बना लिया। कलावती ने कह दिया कि उसके ऑपरेशन में तीन मास की देर है। अतः वह तीन मास बरेली में रहकर पुनः दिल्ली आयेगी।

दिल्ली लौटकर सरोज को ऐसा भास हुआ कि उसके भीतर नये जीव का बीजारोपण हो गया है। जिस दिन दिल्ली पहुँची उसके अगले दिन ही उसका जी मितलाने लगा। शाम को विनोद घर लौटा तो सरोज बिस्तर पर लेटी थी। दिन-भर वह उलटियाँ ही करती रही थी। कुछ खाने को जी भी नहीं किया था।

"मुझे फोन कर देतीं तो मैं जल्दी घर आ जाता।" विनोद ने उसके मुख पर देखते हुए कहा।

"कुछ बात होती तो फोन करती। अभी तीन दिन पूर्व माताजी बरेली में कह रही थीं, भगवान् करे उनकी यात्रा सफल हो। अब मैं देखती हूँ कि उनकी बात सत्य होने जा रही है।"

विनोद ने सरोज के मुख पर मुस्कराते हुए देखा। सरोज भी मुस्करा दी। उसने कहा, "अब मुझे माताजी के पास ही रहना चाहिए।"

"तो क्या अमरनाथ की यात्रा से तुम्हारे मन में विरक्ति आ गई है ?"

"विरक्ति तो मैं नहीं कह सकती, क्योंकि यह जन्म-जन्मान्तर की साधना से उत्पन्न होती है। परिवार में एक नया सदस्य आने वाला है। अतः उसके निर्माण-हेतु मुझे अब किसी बड़ी-बूढ़ी स्त्री के पास रहना चाहिए।"

"ओह ! समझ गया। तो तुमको सन्देह है कि मैं संयम से नहीं रह सकूँगा।"

"यह तो मैं नहीं कहती। मैं स्वयं अनुभवहीन हूँ। इसलिए ऐसा विचार आया था। शेष तो आप डॉक्टर हैं। सब-कुछ जानते ही हैं।"

"मैं तो चीर-फाड़ करने वाला डॉक्टर हूँ। तुम्हारा कार्य अब मुझसे भी अधिक कठिन हो गया है। इस पर भी तुम्हारी इच्छा का विरोध नहीं करूँगा। कब जाने की इच्छुक हो ?"

"आप माताजी को पत्र लिख दीजिए। वह बुलायेंगी तो मैं चली आऊँगी।"

"तो तुम्हारा अपना मन जाने को नहीं करता! मेरी परीक्षा ले रही थीं क्या?" विनोद फिर मुस्करा दिया।

"आपकी परीक्षा मुझ-जैसी मन्द बुद्धि स्त्री नहीं ले सकती। आपको मेरे यहाँ होते हुए बहुत कठिनाई होगी।"

"और तुम चली जाओगी तो नहीं होगी क्या?"

"पहले भी तो आप अकेले रहते ही थे न!"

"परन्तु उस समय मेरा हृदय रिक्त पड़ा था। अब कोई बस गया है आकर!" विनोद उदास हो गया।

सरोज ने उसके मुख पर देखते हुए कहा, "आप नाराज मत होइए। आप पसन्द नहीं करते तो मैं नहीं जाऊँगी।"

"पसन्द का प्रश्न ही नहीं प्रिये! यदि तुमको मुझ पर विश्वास न हो तो मैं तुम्हें बरेली पहुँचा आता हूँ।"

"मैं नहीं जाऊँगी। मैं समझती हूँ यहाँ आप मेरी देख-भाल अधिक अच्छी प्रकार कर सकते हैं। वहाँ मैं माताजी से संकोचवश कुछ कह भी नहीं सकूँगी। यहाँ आप स्वयं देख-भाल कर लेंगे।"

"अच्छी बात है! मैं माताजी को यहाँ बुला लेता हूँ। वह तुम्हारे कमरे में सो रहा करेंगी। तुमको अकेले भय नहीं लगेगा। मैं दूसरे कमरे में सोऊँगा।"

"अभी सप्ताह-भर पहले तो वह बरेली गयी हैं। वह आ नहीं सकेंगी। मैं अकेली डरती नहीं। आप अपने कमरे में सो सकते हैं। मुझको भय नहीं लगेगा।"

विनोद के पास कोई उत्तर नहीं था। उसकी हँसी फूट पड़ी। उसने सरोज की ठुड्डी को ऊपर उठा, उसकी आँखों में देखते हुए पूछा, "क्या तुम्हारी ये बातें मन्द बुद्धि की द्योतक हैं?"

सरोज ने मुख नीचा कर लिया। उसका विचार था उसने विनोद को

समझा दिया है कि अब दोनों को संयम से रहना चाहिए। इस पर भी वह अकेली अपने कमरे में सोयेगी, यह चुनौती तो उसने स्वीकार कर ली थी। किन्तु अब सोचने लगी, उसको अकेले नींद नहीं आयेगी।

जब से उसका विवाह हुआ था, वह एक दिन भी कमरे में अकेली नहीं सोई थी। बरेली में माला उसके कमरे में सोती थी और यहाँ दोनों पति-पत्नी के सोने का एक ही कमरा था। अतः उसने कहा, "मेरी बुद्धि तर्क-वितर्क करने लगती है। कभी बवंडर उठता है तो मैं अधीर हो जाती हूँ। अब भी मैं आपसे यही पूछना चाहती हूँ कि क्या हमारे लिए यह सम्भव है? इसी तर्क-वितर्क के अन्तर्गत मेरे मन में विचार आया था कि मैं माताजी के पास रहूँ।"

"सरोज! जैसे तुम कहोगी, वही होगा। मैं जानता हूँ तुम साधारण स्त्रियों की भाँति भावुक नहीं हो। यह भी जानता हूँ कि तुम मेरा बहुत मान करती हो। अकेली कमरे में सोओगी तो डरोगी अवश्य, इस विषय में तो यही कहूँगा।"

"तो फिर क्या किया जाये? माताजी ने मुझको सीख दी थी कि गर्भ धारण करने के पश्चात् पति के समीप नहीं रहना चाहिए। किसी समय भी मन चंचल हो सकता है।"

"यह बात तो मुझ पर लागू होती है। तुम तो मेरी आज्ञा का पालन करती हो। अब मैं तुम्हारी इस भावना का आदर अवश्य करूँगा।"

सरोज के नेत्र सजल हो गये। विनोद समझ न सका। उसने पूछा, "क्या बात है, सरोज! तुम रो रही हो?"

"ये खुशी के आँसू हैं। आप कितने महान् हैं! ऐसा विचार कर मन में विशेष प्रकार की गुदगुदी हुई और न जाने आँखें क्यों जल-मग्न हो गयीं!"

रात को विनोद और सरोज पहले की भाँति एक ही कमरे में सोये। अपने पलंग पर लेटे हुए विनोद ने कहा, "मैं समझता हूँ आने वाला बहुत भाग्यशाली है। माताजी ने भी तीर्थ-यात्रा का सुझाव समय पर दिया।

इस यात्रा ने मेरे मन में एक विशेष प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार, ये मन के विकार हैं। जितना हम आत्म-बल से इन्हें नियन्त्रण में रख सकें, उतना हम अपनी आत्मा को उन्नत कर सकेंगे।"

"आपका कहना ठीक है। आत्म-संयम एक जन्म में तो प्राप्त होता नहीं। बहुत स्वाध्याय और तपस्या की आवश्यकता है। इस पर भी आत्मा का एक विशेष गुण है—प्रयत्न! मानव को सदा प्रयत्न करते रहना चाहिए। प्रगति के लिए मार्ग खुल जायेगा।"

विनोद आत्म-विभोर हो उठा। कितनी समानता थी उसके विचारों की सरोज की जीवन-मीमांसा से!

इस प्रकार की चर्चा अब प्रायः पति-पत्नी में हुआ करती थी। दो मास बीत गए। सरोज अब चौथे मास में जा रही थी। कलावती ऑपरेशन के लिए दिल्ली आई तो उसको विदित हुआ कि सरोज को गर्भ ठहरा हुआ है। इससे पूर्व न विनोद ने कुछ लिखा था और न ही सरोज ने। दोनों अपने-अपने स्थान पर संकोच करते रहे। शर्माते भी थे।

कलावती की प्रसन्नता का पारावार नहीं था। किन्तु प्रसन्नता को दबाकर गम्भीर मुद्रा धारण कर उसने कहा, "बहू! तुमने मुझे सूचना तक नहीं दी। अकेले कष्ट हुआ होगा शुरू-शुरू में।"

"हाँ, माँजी! कष्ट तो मुझको बहुत हुआ। बीस-बीस उलटियाँ नित्य आ जाया करती थीं। लेडी डॉक्टर से इन्जैक्शन और औषधि भी लेती रही। इस मास से कुछ तबीअत ठीक रहने लगी है।"

"नये प्राणी का निर्माण कोई सरल कार्य है क्या? तुम मुझे सूचित तो करतीं। मैं उसी दिन तुम्हारे पास आ जाती।"

"मैंने इनसे कहा था आपको पत्र लिख दें। कदाचित् वह भी लज्जा-वश संकोच करते रहे। आपके आशीर्वाद से मैं अब स्वस्थ हूँ।"

"भगवान् तुम्हें पुत्र प्रदान करे। तुम सदा सुहागवती रहो।" कलावती ने आशीर्वाद दिया। उसके आ जाने से सरोज को संध्या-उपासना में और

रुचि हो गई। कुछ दिन पश्चात् कलावती को अस्पताल में प्रविष्ट करा दिया गया। निश्चित दिन उसकी एक आँख का ऑपरेशन हो गया। उस दिन माला और भगवतीप्रसाद भी दिल्ली आ गए थे। ऑपरेशन सफल हुआ था।

दस ○○○

कलावती का ऑपरेशन होने के पश्चात् जब वह पुनः स्वस्थ हो गई और उसको स्पष्ट दिखाई देने लगा तो उसने बरेली जाने का कार्यक्रम बना लिया। वह सरोज को भी साथ ले जाना चाहती थी।

सरोज अपने बढ़े हुए पेट को देख लज्जावश चुप थी। उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। एकान्त में उसने विनोद से कहा, "क्या आप मुझको इस अवस्था में बरेली भेजना चाहते हैं ?"

"तुम्हारा मन क्या चाहता है ?"

"दिल्ली छोड़कर प्रसव के लिए अपने पति से दूर बरेली जाना, कुछ बात जँचती नहीं और वह भी उस स्त्री के लिए जिसका पति डॉक्टर हो।"

"तुम्हारा कहना तो ठीक है, प्रिये ! परन्तु माताजी का मान तो रखना ही पड़ेगा। उनके विचार से पहली सन्तान अपने घर में होनी चाहिए।"

सरोज इसमें कुछ युक्ति नहीं देखती थी। कलावती का ऐसा सोचना केवल मन की भावना-मात्र ही थी। इस पर भी सरोज विवश थी।

अब माला भी उससे दूर हो गई थी। वह ग्रामों में घूमती फिरती थी। उसका कहना था, वह स्त्री-वर्ग को शिक्षित करने का यत्न कर रही

है। सरोज देख रही थी कि वह नेतागिरी के प्रलोभन में अपना समय व्यर्थ गँवा रही है। दूसरी पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत ग्रामसुधार की ओर पग उठाये जा रहे थे। जिला बरेली के कांग्रेस प्रधान की अनुकम्पा से माला का उस जिले में प्रमुख स्थान था।

सरोज के विचारानुसार यह ठीक नहीं था। वह माला की संगत चाहती थी। यह भी एक कारण था कि उसका मन बरेली जाने के लिए तैयार नहीं था।

बिनोद ने भी जब अपनी माँ की इच्छा का विरोध नहीं किया तो सरोज ने माला का उल्लेख कर दिया। उसने पूछा, "क्या आप माला का 'सोशल वर्कर' के रूप में इस प्रकार काम करना ठीक समझते हैं ?"

"ऐसी ही उसकी इच्छा थी। पिताजी ने उसे मना नहीं किया। अतएव मुझे भी कोई आपत्ति नहीं।"

"मेरे खयाल से तो हमें उसके विवाह की चिन्ता करनी चाहिए।"

"लड़का तो पिताजी ने देखा है; किन्तु माला का कहना है कि अभी एक वर्ष तक विवाह नहीं करेगी।"

"मुझसे भी यही कहा है। मैंने जब उससे कहा कि उसे कांग्रेस का काम छोड़कर अपने नये जीवन की योजना बनानी चाहिए तो वह मुझसे रूठ गई।

"मैं तो चाहती हूँ कि माला घर में रहे और उसके विवाह की तैयारी अभी से आरम्भ हो जानी चाहिए। वर्तमान शिक्षा से तो नैतिक पतन हो रहा है।

"अब तक इसका ग्रामों पर यह प्रभाव हुआ है कि लोग गाँव छोड़कर नगरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं। अतः मैं माला के विचारों से सहमति प्रकट नहीं कर सकी और वह मुझसे रूठ गई।

"मैं तो चाहती हूँ कि यदि मुझे बरेली जाना है तो माला मेरे पास रहे।"

बिनोद ने सरोज का यह सुझाव रात के भोजन के समय सबके सम्मुख

प्रस्तुत कर दिया। विनोद का चाचा बनवारीलाल भी वहाँ आया हुआ था। पूर्ण बात सुनकर भगवतीप्रसाद ने पूछा, "माला क्या कहती है?"

माला उस समय उद्विग्न मन थी। उसको भाभी द्वारा अपनी इच्छा का विरोध करते देख दुःख हुआ था। अब भैया को पिताजी से कहते सुन वह समझ गई कि भैया के कान भर दिये गये हैं। दोनों मिलकर पिताजी उसके विरुद्ध करना चाहते हैं। सरोज उसके मन के भाव उसके मुख पर को स्पष्ट पढ़ रही थी।

पूर्व इसके कि माला कुछ उत्तर देती, सरोज ने कहा, "पिताजी! मेरी माला से बातें हुई हैं। उसकी इच्छा बहुत प्रबल है कि ग्रामों में घूम कर अपना कार्य जारी रखे। किन्तु मैंने जहाँ अपना स्वार्थ देखा है, वहाँ माला के विवाह की तैयारी का सुझाव दिया है।"

इस पर तो माला आवेश में आ गई। उसने सबके सम्मुख ही कह कह दिया—

"भाभी! बरेली में तो तुम अच्छी-भली थीं। अब दिल्ली का जलवायु तुम्हारे अनुकूल नहीं बैठा क्या, जो हाथ धोकर मेरे पीछे पड़ गई हो?" इतना कह वह वहाँ से उठकर चली गई और अपने बिस्तर में मुख छिपा कर रोने लगी।

सरोज को दुःख हुआ। वह अति सरल-हृदय थी। उठकर उसके पीछे चली गई। उसकी पीठ पर हाथ फेरती हुई नम्र स्वर में बोली, "माला बहन! मुझे गलत मत समझो। क्या अब तुम्हारा मन मेरे साथ रहने को नहीं करता? तुम मुझसे इतनी तटस्थ क्यों रहने लगी हो?"

"तुम बहुत बदल गई हो, भाभी!" माला के लोचनों से अश्रुधारा बह निकली।

"पगली!" सरोज ने उसको अपने अँग लगाते हुए कहा, "तुम भूल गईं जब मैं नई ब्याही आई थी, उन दिनों तुमने मुझसे इसी विषय पर अपना संशय निवारण किया था। उस समय तुम मुझसे सहमत थीं कि वर्तमान शिक्षा से हमारा नैतिक उत्थान सम्भव नहीं। अब उसी नीति को

तुम केवल नाम पाने के लिए प्रोत्साहन दे रही हो।"

"उस समय मुझको अनुभव नहीं था। अब मैं घूमकर देख आई हूँ। ग्रामवासी पहले से अधिक सुखी हैं।"

"तुम्हारा यह केवल भ्रम-मात्र है। मुझको तुम्हारी तथा परिवार की अधिक चिन्ता है। खैर, छोड़ो इन बातों को। यदि तुम्हें मेरी बात पसन्द नहीं तो मैं पुनः नहीं कहूँगी। तुम भी वायदा करो, मुझको क्षमा कर दोगी।"

"भाभी ! ऐसा मत कहो।" माला सरोज से लिपटकर बोली, "तुमसे मैंने बहुत-कुछ सीखा है। तुम मुझसे बड़ी हो। क्षमा मुझको माँगनी चाहिए।"

अब सरोज ने उसको कुछ अधिक कहना ठीक नहीं समझा, यद्यपि वह उसके विचारों से सहमत नहीं थी कि कांग्रेस का ही प्रचार ग्रामों में करने से देशवासियों का कुछ भला होने वाला है। फिर दोनों में इधर-उधर की बातें होने लगीं। कुछ देर पश्चात् दोनों बैठक में लौट आईं। भगवतीप्रसाद, विनोद, उसकी माँ और बनवारी बैठे बातें कर रहे थे। दोनों को साथ-साथ आते देख बनवारीलाल ने मुस्कराकर कहा, "ऐसा लगता है ननद भाभी में सुलह हो गई है।"

"लड़ाई तो हमारी पहले भी नहीं थी, चाचाजी ! माला रूठ गई थी, मैंने उसे मना लिया है।"

"तो क्या माला तुम्हारी बातों से सहमत हो गई है ?"

"यह तो मैं नहीं कह सकती। यदि उसे सेवा-कार्य में रुचि है तो मैं उसमें परिवर्तन तो ला नहीं सकती।"

"देखो सरोज ! मैं तुमसे सहमत नहीं हूँ। परिवर्तन तो किसी समय अकस्मात हो सकता है। माला का कार्य वास्तव में सेवा-कार्य है, यह मैं नहीं मानता। मैंने सुदेश के जीवन का अध्ययन किया है। वह भी इन्हीं अनर्गल विचारों से प्रभावित होकर एक ऐसे नास्तिक व्यक्ति से विवाह कर बैठी है, जिसने उसे समाजद्रोही बना दिया है।"

"परन्तु चाचाजी !" माला ने बीच में बोलते हुए कहा, "वह तो भारत में समाजवाद को ठीक समझती है।"

"हाँ, कांग्रेस भी तो यही चाहती है। रहा सुदेश का व्यक्तिगत प्रश्न। वह मेरी पुत्री होते हुए भी मुझसे भिन्न है। उसमें समाज के नियमों के प्रति विद्रोह जाग पड़ा है। एक नगर में रहती हुई वह मुझसे मिलती तक नहीं।"

माला मौन हो गई। वह एक बाप के मनोद्गारों को समझ रही थी। बनवारीलाल ने कुछ क्षण रुककर विनोद को सम्बोधन कर कहा—"मैं सरकार का ऊँचे पद का प्रथम श्रेणी का अफ़सर हूँ। यदि सरकार के विरुद्ध बोलूँ तो उन नियमों का उल्लंघन होगा, जिनके पालन के लिए मैं विवश हूँ। इस पर भी मैं जानता हूँ वर्तमान सरकारी नीति से बड़े-बड़े व्यक्तियों के सम्बन्धी तथा मित्रजन लाभ उठा रहे हैं। जनसाधारण तो नित्य नये करों के नीचे पिस रहे हैं। उनका जीवन-स्तर गिर रहा है। स्वतन्त्रता मिले कई वर्ष हो गए। निर्धन और अधिक निर्धन होता जा रहा है।

"युक्ति यह दी जाती है कि जनसंख्या बहुत बढ़ गई है। इसको रोकने के लिए बहुत पहले ही प्रयत्न आरम्भ हुए थे, किन्तु अब भारत की जनसंख्या में और भी वृद्धि हो गई है। रोकने के जो साधन जुटाए जाते हैं उनसे तो नैतिक पतन ही हुआ है, जनसंख्या में कमी तो हुई नहीं। गर्भ-निरोध की गोलियाँ खिलाकर व्यभिचार को प्रोत्साहन ही दिया गया है। क्या यह सब-कुछ समाजवाद लाने के प्रयत्न में हो रहा है?"

माला पहले भी ऐसी आलोचना अपने चाचा के मुख से कई बार सुन चुकी थी। वह अधिक आलोचना करने वाले व्यक्ति को ठीक नहीं समझती थी, तो भी बनवारीलाल की कई बातें सत्य पर आधारित थीं। माला यह जानती थी कि सन्तति-निरोध अथवा परिवार-नियोजन-केन्द्र जो खोले गए हैं, उनका लाभ जनसाधारण नहीं उठा रहे हैं। उन केन्द्रों में स्त्रियाँ और लड़कियाँ भी बहुत संख्या में काम करती हैं। एक लड़की,

जो ग्रामीण स्त्रियों में प्रचार करने जाया करती थी, माला से मिली थी। उस लड़की का नाम इन्दुबाला था और वह स्वयं कुमारी थी। उसने माला को बताया था कि वह ऐसी बातें विवाहिता स्त्रियों को समझाया करती है जिससे वे गर्भ धारण करने से बच सकें और अपने परिवार को सीमित रख सकें। वह औषधियाँ और 'प्रोफिलेक्टिक्स' देकर उनके प्रयोग करने का ढंग भी बताया करती है।

माला इन्दु की बात सुन खिलखिलाकर हँस पड़ी थी। इन्दु ने उससे पूछा था, "माला बहन! तुम्हें मेरी बातों का विश्वास नहीं आता। बहुत सी बहनों ने मेरी बातों को क्रियान्वित किया है और उनके परीक्षण सफल हुए हैं।"

माला ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह हँसी तो इसलिए थी कि इन्दु स्वयं कुमारी थी। ऐसी बातें वह विवाहिता स्त्रियों, पाँच-पाँच बच्चों की माताओं को समझाया करती थी कि वे भोग-विलास में रत रहकर भी किस प्रकार गर्भावस्था से बच सकती हैं और प्रसव-पीड़ा के कष्ट से उन्हें सदा के लिए मुक्ति मिल सकती है। वह समझ न सकी थी कि ऐसे प्रचार से समाज कितना उन्नत होगा!

अब अपने चाचा की बातें सुन उसे इन्दु से हुई वार्ता स्मरण हो आई थी और वह अतीत की स्मृति में खो-सी गई थी।

वह विचार करने लगी कि स्त्री को भगवान् ने गर्भ धारण करने के लिए बनाया है अथवा कोई उसका और भी प्रयोजन है! अपनी माँ की ओर दृष्टिपात करती तो एक ही बात उसके मस्तिष्क में कचोटने लगती कि वह तो जो-कुछ भी सोचती और करती रही है, अपनी सन्तान के सुख और खुशी के लिए। विनोद का विवाह हुआ तो उसकी प्रसन्नता असीम थी। अब वह दादी बनने के स्वप्न ले रही है और कितनी प्रसन्न है! क्या नारी का सबसे महान् कार्य स्वस्थ, सुन्दर और योग्य सन्तान को जन्म देना है अथवा और भी कुछ है?

यदि ऐसा है तो हमारे नेता स्त्रियों के उत्थान की चर्चा क्यों करते

रहते हैं ? सन्तति-निरोध की बातें क्यों सोची जाती हैं ? क्या कोई और उपाय नहीं जिससे देश की जनता में निर्धनता के साथ-साथ नैतिक पतन को भी रोका जा सके ?

माला के मस्तिष्क में कई संशय उठ रहे थे। बुद्धि कुछ कहती थी और मन कुछ। वह सबके सम्मुख संशय निवारण करने का भी साहस न कर सकी। अगले दिन उसने सरोज से पूछा, "भाभी ! क्या तुम प्रसन्न हो ?"

"क्या अभिप्राय है तुम्हारा इस प्रश्न से ? मैं तो सदा प्रसन्न रहने का यत्न करती हूँ।"

"मेरा मतलब है, तुम प्रसन्न हो कि तुम माँ बनने जा रही हो ?"

"अप्रसन्न होने की क्या बात है ?"

"एक और खाने वाला आ जायेगा।"

"आना ही चाहिए। यह तो पितृ-ऋण है। मेरी माँ ने भी तो मुझे जन्म दिया था। पाल-पोसकर बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया। संसार-चक्र तो ऐसे चलेगा ही।"

"जनसंख्या में वृद्धि तो वर्तमान परिस्थितियों में देश के विकास में बहुत बड़ी बाधा है।"

"देखो माला ! यही हमें बहुत बड़ा भ्रम है। यह भय खाना भीरुता है कि नया आने वाला प्राणी हमारा राशन खा जायेगा। सम्पन्नता इस प्रकार से नहीं आती कि चंगी-भली स्त्रियों को बाँझ बना दिया जाय।

"जो व्यक्ति अपना विकास नहीं कर सकता, वही देश के विकास की ओर अधिक ध्यान देता है। ये सब बातें उलटी खोपड़ी की उपज हैं। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने विकास की ओर ध्यान दे तो उन व्यक्तियों का समाज ऐसा समाज होगा जिसमें यह अनर्गल धारणा पनपने न पायेगी। किन्तु ऐसा धार्मिक शिक्षा द्वारा ही हो सकेगा। वर्तमान अवस्था में, इसलिए, सब आयोजन व्यर्थ सिद्ध होंगे और मानव-समाज में नये-नये रोग फूटने की सम्भावना बनी रहेगी। पशु-शक्ति के बल पर सब कार्य

होंगे और लोग त्राहि-त्राहि करने लगेंगे। स्वार्थ-पूर्ति के लिए मानवता का सौदा होगा, प्रलय मच जायेगी।"

इस प्रकार की बातें माला के मस्तिष्क पर पुनः प्रहार करने लगीं। बरेली पहुँचने तक उसमें कुछ परिवर्तन आने लगा। सरोज अब उठने-बैठने में भी कष्ट अनुभव करती थी। घर का काम-काज तो कलावती उसको करने नहीं देती थी। माला और वह घूमने जातीं। धीरे-धीरे माला की रुचि कांग्रेस के कार्य और ग्राम-सेवा से हटने-सी लग गई थी।

सरोज अनुभव कर रही थी कि माला अब दिन-प्रतिदिन गम्भीर बनती जा रही है। उसके मुख पर विशेष चमक दिखाई देने लगी थी। गुलाब की बन्द कली की भाँति लालिमा थी उसके कपोलों पर। सरोज को प्रसन्नता होती थी और वह मन-ही-मन उसके सुखी जीवन के लिए प्रार्थना करती थी।

सरोज के लड़का हुआ तो विनोद भी बरेली आया। भगवतीप्रसाद और कलावती बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने इस खुशी के उपलक्ष में अपने सम्बन्धियों तथा मित्रों में खूब मिठाई बाँटी।

विनोद सरोज के पास बैठा हुआ था। सरोज मुन्ने को सामने लिटा उसके सुन्दर मुख पर देख रही थी। बच्चा अपने ध्यान में मग्न चुपचाप लेटा था। उसने दूध पी लिया था और हाथ-पाँव मार रहा था। उनके कमरे का द्वार खुला था और परदा लगा था द्वार पर।

बाहर चन्दू ने आकर पूछा, "अन्दर आ सकता हूँ, मालिक!"

"हाँ, आओ चन्दू! कैसे हो?"

"आपकी कृपा है, मालिक! सोचा डॉक्टर बाबू को पृथक् से बधाई दे आऊँ।" इतना कहते हुए चन्दू ने हाथ में पकड़ा हुआ लिफाफा सरोज के सामने रख दिया।

"यह क्या है, चन्दू!" सरोज ने पूछा।

"यह मुन्ने के लिए है, बीबीजी!"

लिफाफे में खिलौने तथा वस्त्र थे। सरोज ने कहा, "तुमने क्यों कष्ट

किया चन्दू !"

"कितना प्यारा मुन्ना है !" चन्दू ने मुन्ने की ओर देखते हुए कहा । उसकी आँखें सजल हो आईं ।

"क्या बात है, चन्दू !"

चन्दू ने प्रोत्साहित होकर कहा, "जब मालिक ने मुझ पर तरस खाकर मुझको पुनः नौकर रख लिया तो मैं भी अपने को इंसान समझने लगा । यदि डॉक्टर साहब मुझे दिल्ली में न मिलते तो न मालूम मैं कहाँ की खाक छान रहा होता ! जब इनका विवाह हुआ तो मुझे बहुत खुशी हुई । उस दिन से मैं भगवान् से यही प्रार्थना करता रहा हूँ कि इनके घर लड़का ही हो ।

"आज मुन्ने को आपकी गोद में खेलते देख मेरा मन बहुत प्रसन्न हुआ है कि भगवान ने मेरी प्रार्थना सुन ली, अन्यथा मैं पुनः एक बार नास्तिक हो जाता ।"

"तो तुम पहले नास्तिक थे क्या ?" सरोज ने मुस्कराते हुए पूछा ।

"नास्तिक मन से तो नहीं था परन्तु बना दिया गया । सचाई और ईमानदारी का जीवन बिताने पर जब चारों ओर से विपत्ति आ पड़ी तो मैं घबरा गया । मेरी पत्नी भगवान् को बहुत मानती थी । वह दो वर्ष की कन्या छोड़कर भगवान् को प्यारी हो गई । एक वर्ष पश्चात् वह भी चल बसी । भगवान् का अपने परिवार पर ऐसा प्रकोप देख मैं पागल हो उठा । इस पर भी मैंने यही सोचा कदाचित मुझे पूर्व-जन्म के कर्मों का फल मिल रहा है। मैंने दिल पर पत्थर रख लिया । जब मैं जीविकोपार्जन का कोई साधन न ढूँढ सका तो दिल्ली की सड़कें नापने लगा । दो दिन तक भूखा रहा । कब तक ऐसा जीवन चलता ! विवश हो मैं भीख माँगने लगा ।

"भीख माँगने से बढ़कर कोई अभिशाप नहीं मानव के लिए । इस पर भी पेट तो भर ही जाता है । शनैः-शनैः मैं अन्धों और पंगु भिखारियों के सम्पर्क में आया । उनकी दुर्दशा देख तो मेरा मन भी रो दिया । मेरे

पास जो दिन-भर में पैसे एकत्रित होते थे, उनमें से मैं उनकी कुछ सहायता कर देता था। इन परिस्थितियों में पड़कर मेरे मन में सन्देह होने लगा था कि भगवान् का अस्तित्व है भी सही अथवा नहीं। मेरे मन में उन आस्तिक व्यक्तियों के प्रति भी विद्रोह जाग पड़ा था जो मन्दिरों में बैठे हुए भगवान् के नाम पर अनेक कुकर्म करते थे और आस्तिक कहलाते थे।

"मेरा स्वास्थ्य दिन-प्रति-दिन गिरता जा रहा था। पेट-भर भोजन तो मुझको मिलता था, फिर भी मेरा मन मुझसे कहता, मैं भीख माँगकर अपनी क्षुधा शान्त करता हूँ। मुझमें भगवान् और उसकी भक्ति के प्रति श्रद्धा विलुप्त होती जाती थी। एक दिन अकस्मात डॉक्टर साहब मिल गये और मैं पुनः इन्सान बन गया।

"जब मैं यहाँ आकर पुनः दुकान पर कार्य करने लगा, तो मेरे मन में प्रकाश होने लगा। मुझको ऐसा भास हुआ कि डॉक्टर साहब भगवान् के रूप में मुझे मिले हैं, जिन्होंने मुझको गर्त से निकला है। गत मास यहाँ निर्वाचन हुए तो मैं भी विचार करने लगा, यदि डॉक्टर साहब यहाँ से खड़े होते तो मैं अपने मतदान को सफल हुआ समझता। मैं वोट देने नहीं गया। निर्णय ही नहीं कर सका कि किसको वोट दूँ।"

सरोज चन्द्र की कथा सुन गम्भीर हो गई। दरिद्रता भी एक अभिशाप है। उदर-क्षुधा को शान्त किए बिना भगवान् भी याद नहीं आता। भूखा व्यक्ति आत्मा-परमात्मा को क्या समझे! कदाचित यही कारण है कि नास्तिकवाद और भौतिकवाद में विश्वास रखने वाले व्यक्ति भोले-भाले निर्धन लोगों के उद्गारों से खेलने का यत्न करते हैं। उनके सम्मुख भूख और दरिद्रता के भयानक चित्र खींच उनको नास्तिक बना देते हैं। नास्तिकवाद से सामाजिक सम्पन्नता तो आई नहीं, प्रत्युत चरित्रहीनता बढ़ गई है।

सरोज को अभी बरेली में ही रहना था। विनोद दिल्ली लौटा तो उसको नौकर से पता चला कि किशोरीलाल कपूर उससे मिलने आया था।

विनोद विचार में पड़ गया। सोहन के पिता का उससे ऐसा कौनसा

आवश्यक काम हो सकता है ! उसने उसके घर फोन कर दिया ।

किशोरीलाल को कैंसर का रोग हो गया था । वह डॉक्टर विनोद से विचार-विमर्श करने आया था । कैंसर पेट में था और वह अति दुर्बल हो गया था । विनोद कपूर की प्रार्थना पर उसकी कोठी पर मिलने गया ।

कोठी सुनसान पड़ी थी । चिकित्सा तथा ऑपरेशन-सम्बन्धी बातें करने के पश्चात् किशोरीलाल ने कहा, "सुना है, सोहन ने विवाह कर लिया है ।"

"बहुत प्रसन्नता की बात है, चाचाजी ! कहाँ है आजकल ?"

"मुझको मालूम नहीं ।"

"उसका विवाह कब हुआ ?"

"मुझे तो मुमताज़ का पत्र देहरादून से आया था कि सोहन विवाह करने का विचार रखता है । पश्चात् मुमताज़ अथवा सोहन दोनों में से कोई भी यहाँ नहीं आया ।"

"तो सोहन का विवाह नहीं हुआ होगा । होता तो आपको निमन्त्रण तो अवश्य मिलता ।"

"मैं निमन्त्रण की आशा भी नहीं करता था । मुमताज़ का एक और पत्र देहरादून से मिला था कि वह एक-दो मास तक सोहन तथा उसकी पत्नी के पास रहेगी । पश्चात् दिल्ली लौटेगी । उसने कुछ रुपया भी मँगवाया था । वह मैंने भेज दिया है ।"

विनोद विस्मय में किशोरीलाल का मुख देखने लगा । किशोरीलाल ने पूछा, "तुम्हें आश्चर्य हो रहा है कि मित्र ने तुमको आमन्त्रित नहीं किया ?"

"नहीं । आश्चर्य अपने लिए नहीं हो रहा । आप उसके पिता हैं । इसलिए सोच रहा हूँ कि यदि यह सत्य है तो कोई रहस्य की ही बात है ।" विनोद का उत्तर था ।

सोहन जब से गया था, विनोद को उसका कोई पत्र भी नहीं आया था । उसने यह भी बताया था कि मुमताज़ गर्भवती है । अब किशोरीलाल

की बात सुन विनोद चकरा गया कि मामला क्या है ?

मुमताज़ के अब तक बच्चा हो जाना चाहिए था। किन्तु वह सोहन और उसकी बहू की देख-भाल के लिए देहरादून में डटी है। वह यह अनुमान नहीं कर सका कि मुमताज़ जब से वहाँ गई है, दिल्ली लौटी ही नहीं, अथवा इस बीच कोई नवीन घटना घटी है। वह पूछना चाहता था कि मुमताज़ का पत्र कब आया था कि किशोरीलाल ने कह दिया, "विनोद ! कुछ भी रहस्य हो। मैंने उसको फारग़ती देने का निश्चय कर लिया है। मैं बहुत बड़ी सम्पत्ति का स्वामी हूँ। जो भी मेरा यह रोग ठीक कर देगा, आधी सम्पत्ति उसी के नाम लिख दूँगा।"

विनोद के लिए यह प्रलोभन कुछ अर्थ नहीं रखता था। वह जानता था कैंसर एक असाध्य रोग है। ऑपरेशन हो जाने पर भी पुनः फूट सकता है। अतः उसने कहा, "कपूर साहब ! आप निराश न होइए ! यत्न करना डॉक्टर का काम है। शेष सब भगवान् के हाथ में है।"

ग्यारह ○○○

सोहन विनोद के घर से चला तो था अपने पिता से मिलकर मुमताज़ के विषय में बताने के लिए, परन्तु वहाँ पहुँचने से पूर्व उसके विचारों ने पलटा खाया। उसने पिता से मिलने का विचार बदल दिया। वह देहरादून लौट गया।

मार्ग में उसका मन धक-धक कर रहा था। कहीं मुमताज़ अब तक वहाँ से चली न गई हो। किन्तु उसके विस्मय का पारावार न रहा जब उसने अपने निवास-स्थान पर पहुँचते ही मुमताज़ को एक अन्य व्यक्ति से बातें करते देखा।

मुमताज की सोहन से दृष्टि मिली तो उसने मुस्कराकर कहा, "तुम आ गये, सोहन ! मुझे पूर्ण आशा थी कि तुम लौट आओगे।"

सोहन ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मुमताज के सम्मोहन की मदिरा अभी तक उसके मस्तिष्क पर चढ़ी थी। वह अकेली होती तो उसको बताता कि वह क्यों शीघ्र लौट आया है। अब एक अन्य व्यक्ति को मुमताज के पास बैठे देख, वह चुपचाप दूसरे कमरे में चला गया।

उसके चले जाने के पश्चात्, उस व्यक्ति ने सिगरेट का कश लगाते हुए पूछा, "तो यह है तुम्हारे सेठ का इकलौता बेटा ?"

"जी हाँ। बहुत ही सीधा है बेचारा।"

"सूरत से भी भोन्दू लगता है। अब तक तुम इसको भी काबू नहीं कर सकीं।"

"क्या बताऊँ तरन्नुम साहब ! कपूर बहुत ही चालाक आदमी है। सोहन अपना काम शुरू करना चाहता था। उसके बाप ने पूँजी लगाने से इन्कार कर दिया। मैं चाहती थी कपूर अपने बेटे को मेरी सिफ़ारिश पर कुछ रुपया दे दे तो सोहन मेरा एहसान मानेगा और मैं वक्त आने पर उससे साँठ-गाँठ कर कपूर को वह फाँसा दूँगी कि याद करेगा। मगर उसने मेरी एक न सुनी और नौकरी कर ली।

"सोहन इतना सीधा है कि मेरा थप्पड़ खाने पर भी मुझको, अपने बाप के कहने पर माँ समझने लगा है। वह मुझसे उम्मीद करता था कि मैं लड़की को जन्म दूँगी जिसको वह बहन कह सके।"

"आखिर हिन्दू का छोकरा है न !" तरन्नुम ने मुस्कराते हुए व्यंग किया।

"देखिए, जब आप पिछली बार दिल्ली आकर मुझसे मिले थे, उन दिनों मैं आखिरी बार कपूर से अपनी बात मनवाने की कोशिश कर रही थी।

"आप दो दिन के बाद चले गए। सोहन को नौकरी मिल गई तो मैं सोचने लगी अब हमारे मनसूबे का क्या होगा। कुछ दिनों में मुझको कपूर से

भी कुछ तब्दीली दिखाई दी। वह मुझको मशकूक नज़रों से देखने लगा।

"एक रात वह शराब के नशे में मेरे कमरे में आया। मैं उस दिन बहुत थकावट महसूस कर रही थी। मैंने उससे हम बिस्तर होने से इन्कार कर दिया तो उसने मुझे बाजुओं से पकड़कर झंझोड़ते हुए पूछा, "कौन आता है मेरी गैरहाज़िरी में यहाँ?"

'सुब्हान अल्लाह! आपके सिवा इधर कौन आने की जुर्रत करेगा!' मैंने कहा।

"इस पर वह मेरी आँखों में देखने लगा। मैंने कोई बात नहीं की। वह खिलखिलाकर हँस पड़ा और वहाँ से चला गया। उसकी हँसी में एक खास किस्म की दहशत थी जो मैं बयान नहीं कर सकती। उसके जाने पर मैंने अन्दर से किवाड़ बन्द कर लिये और चैन की साँस ली। उस वक्त मुझे ऐसा लगा जैसे किसी दिन वह जोश में आकर मुझे मार डालेगा। शायद नौकर ने उसको बता दिया था कि आप मुझसे मिलने आये थे, चाहे वह आपका नाम नहीं जानता था।

"आपके जाने के एक मास बाद मुझे शक हुआ कि मुझको आपसे हमल ठहर गया है तो मैं बहुत फिक्रमन्द रहने लगी। आपको खत लिखा और अपने मुस्तकबिल के बारे में सोचती रही।

"अचानक मुझको सोहन का खत मिला। उसी वक्त मैंने अपना प्रोग्राम बना लिया। आपको दूसरा खत इसलिए लिखा कि कहीं आप मुझे दिल्ली चिट्ठी न लिख दें और वह कपूर के हाथ न लग जाये।

"यहाँ आकर मैंने सोहन को खुशखबरी सुना दी कि उसकी बहन आने वाली है। उसी रात मैंने जान-बूझकर शराब पी और सोहन के दिल में अपने लिए कशिश पैदा करने की कोशिश करने लगी, मगर सोहन भाग गया। मेरा खयाल था कि सोहन मेरे चंगुल में फँस जायेगा और बाप-बेटा दोनों को मैं कब्ज़े में रख सकूँगी।"

"तुम्हारा मनसूबा पुख्ता था, मगर अब मामला गड़बड़ दिखाई देता है। मेरा खयाल है कि इस स्कीम को यहीं से ही दूसरी सिमत में मोड़ देना

चाहिए।" तरन्नुम का कहना था।

"कैसे ? आपके इनकलाबी दिमाग़ ने कौनसा नया अजूबा सोचा है ? मैं भी यही चाहती हूँ कि हम जो भी कदम उठायें, उससे एक बार तो तहलका मच जाये और सब-कुछ हमारा हो जाये।"

"ऐसा ही मेरा इरादा है। तुम पहले पक्का इरादा करो कि तुम निडर होकर हालात का मुकाबला करोगी।"

"आप फरमाइए तो सही, तरन्नुम साहब !"

"अब हमको सोहन की हौसला अफज़ाई करनी चाहिए कि वह किसी हसीना को अपनी रफ़ीके-हयात बना ले। तुम उस लड़की की बहन बन जाओ और कुछ दिन यहाँ रहो। फिर तुम तीनों दिल्ली चले जाना और अपने हकूक के लिए सेठ से लड़ पड़ना।"

मुमताज़ को बात समझ आ गई। सोहन की पत्नी की बड़ी बहन होने से वह सोहन की पारिवारिक बातों में हस्तक्षेप कर सकेगी। वह अपनी योजना की रूपरेखा बनाने लगी।

तरन्नुम का पूरा नाम अब्दुल खालिक तरन्नुम था। वह लखनऊ का एक अच्छा शायर था। वेश्याओं और नर्तकियों के कोठों पर वह प्रायः जाता और बहुत से रईस और नवाबज़ादे उससे परिचित थे। वह अपने कलाम से मित्रों तथा वेश्याओं का मन बहलाता था।

मुमताज़ से वह परिचित था। लखनऊ के नवाब नज़ीर हुसैन से उसका परिचय भी तरन्नुम ने कराया था। पश्चात् जब नवाब ने उसको तलाक दे दिया तो तरन्नुम स्वयं उसे अपने पास रखने के लिए तैयार था। मुमताज़ ने उसका प्रस्ताव चुपचाप सुन लिया। वह सोचने लगी तरन्नुम भी उसकी तरह फक्कड़ है। दोनों भूखे मरने लगेंगे।

समय व्यतीत होने पर मुमताज़ को किशोरीलाल कपूर मिल गया। तरन्नुम उसकी खोज करता रहा। कई वर्ष के पश्चात् वह दिल्ली आया तो एक दिन कनॉट प्लेस में शापिंग करते हुए उसने मुमताज़ को देख लिया।

लखनऊ के एक पुराने हमदर्द को देख मुमताज़ बहुत प्रसन्न हुई। तरन्नुम को जहाँ मुमताज़ से आर्थिक लाभ हुआ, वहाँ उसके दो दिन दिल्ली में बहुत आनन्द से कटे।

जब मुमताज़ को सन्देह हुआ कि उसको गर्भ तरन्नुम से ही है तो वह तरन्नुम को अपना हमदर्द समझने लगी। मुमताज का विचार था कि लगभग पचास वर्ष के बूढ़े हिन्दू से उसको गर्भ नहीं ठहर सकता। वह कई वर्ष से उसके साथ रह रही थी। अब एकाएक भिन्न व्यक्ति की सहवासिनी बनने से एक मास में ही उसको गर्भवती होने के लक्षण दृष्टिगोचर हुए तो वह समझ गई कि यह गर्भ तरन्नुम का ही है। तरन्नुम को उसने पत्र लिखा और पश्चात् देहरादून जाने का कार्यक्रम बन गया।

जिस दिन सोहन ने दिल्ली के लिए प्रस्थान किया, तरन्नुम देहरादून आ धमका। उन दिनों उसकी आर्थिक दशा कुछ अच्छी नहीं थी। इसलिए उसने समझा मुमताज के पास पहुँचते ही उसे दो-चार मास तो खाने-पीने की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। देहरादून में तरन्नुम ने मुमताज़ को अकेले देखा तो और भी प्रसन्न हुआ।

सोहन को वापस आये देख वह मुमताज को पूर्ण योजना समझा और उससे दो सौ रुपये लेकर वापस लखनऊ लौट गया।

सोहन को इससे सांत्वना मिली। रात्रि को वह जब सोया तो मुमताज़ ने उससे पूछा, "तुम लौट क्यों आये ?"

"तुम मेरे साथ आना जो नहीं चाहती थीं।"

"तुम झूठ बोल रहे हो, सोहन ! क्या कपूर साहब ने तुमको घर से निकाल दिया है ?"

"मैं वहाँ गया ही नहीं।"

"ओह ! तब तो तुमने समझदारी की बात की है। तुम्हें खुदावन्द-करीम ने सब-कुछ बख्शा है। तुम बहुत बड़े आज़ाद मुल्क के साइंसदाँ हो। तुम्हें किसी के पीछे भागने की क्या ज़रूरत है ?" इतना कहकर मुमताज़ मुस्कराती हुई चली गई।

सोहन रात-भर करवटें बदलता रहा। वह एक बार उठकर मुमताज़ के बिस्तर के पास गया, यह देखने के लिए कि वह सो रही है अथवा उसकी तरह व्याकुल है। मुमताज़ गहरी नींद सो रही है, सोहन ने ऐसा अनुमान लगाया। वह टकटकी लगा उसके मुख को निहारता रहा। उसका मन चाहा कि वह सोई हुई मुमताज के अधरोष्ठ चूम ले। वह उसके बिस्तर पर झुका ही था कि मुमताज हड़बड़ाकर उठ बैठी और कांपती हुई आवाज में बोली, "क्या हुआ ?"

सोहन के पूर्ण शरीर में कँपकँपी होने लगी। वास्तव में मुमताज़ जाग रही थी। जब सोहन के पांव की आहट उसने सुनी तो गहरी नींद का बहाना करके सो गई थी।

सोहन तत्काल कुछ उत्तर न दे सका कि वह क्यों यहाँ आया है ? उससे बात बन नहीं रही थी। मुमताज ने उसका हाथ पकड़ उसे वहाँ बिठाया और पूछने लगी, "कैसे आये हो यहाँ ?"

अब सोहन परिस्थिति को समझ गया था। उसने कहा, "मैंने उस रात की तरह तुम्हारी चीख सुनी और यहाँ चला आया।"

"ओह ! तुम बहुत अच्छे हो, सोहन !" मुमताज ने उसके गले में अपनी बाँह डालकर पूछा, "मगर तुम स्वयं क्यों घबराये हुए हो ?"

दोनों के मुख एक-दूसरे के बहुत निकट थे। सोहन का संयम टूट गया। उसने मुमताज को अपनी बाहुपाश में ले लिया। मुमताज़ ने उसको दूर हटाते हुए कहा, "सोहन ! तुम पागल हो गए हो क्या ? तुम्हारी शादी का बन्दोबस्त मुझे करना पड़ेगा।"

सोहन के पाँव तले से जमीन खिसक गई। मुमताज उसके मुख पर बदलते रंगों का निरीक्षण करने लगी। उसने आगे कहा, "सोहन ! मेरी एक छोटी बहन है नादिरा। ग़जब की खूबसूरत है वह। तुम उससे निकाह पढ़ा लो।"

सोहन चुप रहा। मुमताज ने कुछ क्षण रुककर कहा, "तुम उसको देखना चाहो तो कल ही मेरे साथ लखनऊ चलो।"

सोहन की दशा विचित्र थी। एक रमणी के कामबाणों से उसका हृदय घायल हो गया था। काम का ज्वर अभी उसके मस्तिष्क से उतरा नहीं था। वह मौन रहा। मुमताज़ ने मुस्कराकर कहा, "मैं समझती हूँ सोहन, तुम्हारा दिल तो चाहता है किसी हसीना से बग़लगीर होने के लिए, मगर अपने पिता से डरते हो।

"कपूर साहब की तुम फ़िक्र मत करो। मैं उन्हें समझा दूँगी। तुम्हारी घरवाली आ जायेगी तो वे जायदाद में से भी कुछ तुमको दे देंगे। तुम नहीं चलोगे तो मैं स्वयं ही कल लखनऊ जाकर लड़की को ले आऊँगी।"

सोहन कुछ नहीं बोला और उठकर अपने बिस्तर पर चला गया। उसे रात-भर नींद नहीं आई। वह मुमताज़ के लिए ही दिल्ली से शीघ्र लौट आया था, किन्तु मुमताज़ उसे अपनी बहन से विवाह करने के लिए कह रही थी। सोहन का मस्तिष्क नारी सौन्दर्य के सम्मोहन में इस प्रकार जकड़ा था कि वह निर्णय न कर सका कि उसको क्या करना चाहिए।

इधर मुमताज़ अपने बिस्तर में मुख छिपाये मन-ही-मन प्रसन्न हो रही थी। उसकी सफलता का यह पहला चरण था। वह अगले दिन लखनऊ जाने का का कार्यक्रम बनाते-बनाते निद्रादेवी की गोद में लीन हो गई।

प्रातः उसने सोहन से कहा कि वह लखनऊ जा रही है। सोहन ने न उसको जाने से रोका और न ही स्वीकृति दी। वह अपनी मानसिक दुर्बलता पर लज्जित होते हुए भी एक सुन्दरी की संगत की आकांक्षा रखता था। धन उसके पास नहीं था। इसलिए उसको सन्देह था कि मुमताज़ कैसे उसे अपनी बहन दे देगी। वह यह भी सोचता—मुमताज़ उसको निकाह पढ़ाने के लिए कह रही है। क्या उसको मुसलमान बनना पड़ेगा? और यदि सन्तान हुई तो उसका क्या होगा? वैसे तो वह स्वयं को मज़हब तथा मत-मतान्तर से ऊपर समझता था। उसके ऐसा सोचने में अँग्रेज़ी शिक्षा सहायक हुई थी। अतएव वह चुपचाप देखना चाहता था कि क्या होने जा रहा है। वह अपने काम पर जाने लगा।

सोहन के कार्यालय में यह बात फैल गई थी कि कोई युवा स्त्री उसके

पास आकर ठहरी है। यही कारण है कि वह कार्यालय भी नहीं आया। अब सोहन को अपनी भूल का ज्ञान हुआ। यदि वह दिल्ली न जाता और चुपचाप काम करता रहता तो ऐसी किंवदन्तियाँ न फैलतीं। एक साथी ने उससे कारण पूछ ही लिया। सोहन ने झूठ कह दिया, "पुरानी जान-पहचान वाली अपने शहर की है। अपनी बहन के लिए मुझे देखने आई थी।" इस उत्तर ने उसका मुख बन्द कर दिया।

मुमताज़ ने लखनऊ जाने से पूर्व कपूर को पत्र लिख दिया कि सोहन विवाह करने का इच्छुक है। यह वही पत्र था जिसका उल्लेख कपूर ने विनोद से किया था।

लखनऊ पहुँच कर मुमताज़ तरन्नुम से मिली। उसने सबसे पहला काम यह किया कि उसे लेडी डॉक्टर के पास ले गया। मुमताज़ का गर्भ-पात कराना सबसे पहला आवश्यक काम था। इसके बिना योजना को पूर्ण करना कठिन था। पहले तो मुमताज़ नहीं मानी। पश्चात् जब तरन्नुम ने समझाया तो वह राज़ी हो गई। लेडी डॉक्टर से सब कुछ तय कर लिया गया। गर्भपात के पश्चात् उसे कई दिन तक चिकित्सालय में ही रहना पड़ा। तरन्नुम इससे बहुत प्रसन्न था।

दो सप्ताह तक मुमताज़ देहरादून नहीं लौटी। सोहन ने अनुमान लगाया कि नादिरा एक हिन्दू के साथ विवाह करने के लिए मानी नहीं होगी। अभी ये बातें वह विचार ही कर रहा था कि उसे मुमताज़ का पत्र मिला। लिखा था—

"मेरे प्यारे सोहन !

"मैं यहाँ आते ही बीमार पड़ गई थी। अब कल से कुछ ठीक हूँ। दो-तीन दिन में नादिरा को लेकर देहरादून आऊँगी। हमारा मामूज़ाद भाई जो पहले भी मुझसे मिलने देहरादून आया था, नादिरा का सरपरस्त बनकर हमारे साथ आयेगा। माँ-बाप तो हैं नहीं। वही लड़की की शादी करेगा। तुम मायूस न होना।

"मैंने कपूर साहब को पत्र लिख दिया है। निकाह देहरादून में ही

पढ़ाया जायेगा। तुम्हारी ख्वाहिश जल्द पूरी होगी और एक हसीना तुम्हारी ऐसी ख़िदमत करेगी कि तुम उस पर फ़ख्र करने लगोगे। खुदावन्दताला तुम दोनों को खुशोखुर्रम रखे।"

इस पर भी मुमताज को देहरादून पहुँचने में एक सप्ताह और लग गया।

बारह ○○○

नादिरा बीस-इक्कीस वर्ष की अद्वितीय सुन्दरी थी। तरन्नुम ने उसे सब बातें समझा दी थीं ताकि वह अपना अभिनय सफलतापूर्वक निभा सके। उसको मुमताज ने बताया कि सोहन एक सुन्दर युवक है। जब तक वह उसके पास रहेगी, खाने-पहनने की तो कमी नहीं होगी। पश्चात् यदि उसने चतुराई से काम लिया तो उसके बाप की सारी जायदाद की वह स्वामिन बन जायेगी।

मुमताज और तरन्नुम नादिरा को इस प्रकार के प्रलोभनों में फँसा अपने साथ देहरादून ले गए।

नादरा को अपने माता-पिता स्मरण नहीं थे। उसको यह भी स्मरण नहीं था कि वह लखनऊ कैसे पहुँची। तरन्नुम की कविता पर वह मस्त हो जाती थी। स्वयं भी उसे कविता करने का शौक था। जब से उसने होश सँभाला, वह तरन्नुम को जानती थी। वह एक बूढ़े माली के घर में पली थी। फूलों के गजरे और मालाएं बनाना ही उसका काम था। जैसी फूल सम सुन्दर वह स्वयं थी, वैसी ही सुन्दर मालाएँ वह गूँथा करती थी।

उसे इतना स्मरण था कि तरन्नुम माली को चाचा और वह स्वयं

बाबा कहा करते थे। बूढ़ा माली उसे बेटी की तरह प्यार करता था। उसने नादिरा के पूछने पर भी कभी उसको नहीं बताया था कि उसकी माँ कौन थी। वह सदा टाल देता था और कहता था, "बेटी! वह अल्लाह को प्यारी हो गई।"

नादिरा का उदास मुखड़ा और भी उदास हो जाता और उसकी आँखें सजल हो जातीं। वास्तव में उस वृद्ध माली के पड़ोस में ही नादिरा का घर था। प्लेग फैली और नादिरा के माता-पिता चल बसे।

माली पीरमुहम्मद उस दम्पति को फूल दिया करता था। नादिरा, जिसका शैशव से नाम नीना था, फूलों से बहुत प्यार करती थी। उस समय वह पाँच वर्ष की बच्ची ही थी। नीना के माता-पिता बहुत निर्धन थे। उन्हें कई वर्ष उस घर में रहते हो गए थे। कोई सम्बन्धी कभी भी उनसे मिलने नहीं आया था। माली भी संसार में एकाकी ही था। अतः दोनों भिन्न-भिन्न समुदाय के होते हुए भी एक अच्छे पड़ौसी की भाँति रह रहे थे।

उस हिन्दू दम्पति की अकस्मात् मृत्यु से नीना निराश्रय हो गई। माली उसका बेटी की भाँति पालन-पोषण करने लगा। उसने वह मुहल्ला छोड़ दिया और नीना नादिरा के नाम से पुकारी जाने लगी।

नये मुहल्ले में माली को तरन्नुम मिला। तरन्नुम का मकान माली के घर के पास दो-चार मकान छोड़कर था।

जब नादिरा सज्ञान हुई तो माली पीरमुहम्मद को उसके विवाह की चिन्ता होने लगी। वह तरन्नुम को उसके योग्य तो समझता था, परन्तु जब वह देखता कि तरन्नुम दिन-भर मुँह में पान दबाये आवारागर्दी ही करता है, कुछ काम-धन्धा तो करता नहीं, तो उसका मन ऐसे दामाद की कल्पना कर बुझ-सा जाता। उसे नादिरा से बेटी की तरह स्नेह था।

एक दिन तरन्नुम माली के घर आया तो उसने स्वयं ही बात चला दी, "चाचा! नादिरा अब पर निकाल रही है। तुम्हें कुछ उसकी फिक्र भी है या नहीं?"

"मुझको इसकी इस कदर फिक्र है कि मेरी नींद हराम हो गई है। लेकिन कोई उसके लायक लड़का भी तो मिले।"

"ठीक कहते हो, चाचा !" तरन्नुम ने एक दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "तुम तो छोकरी के बदले मोटी रकम कमाने की आस लगाये बैठे होगे, वरना मैं ही रख लेता इसको।"

"क्या बकते हो ?" पीरमुहम्मद का मन क्रोध से जल उठा।

तरन्नुम दुबला-पतला युवक था। पीरमुहम्मद वृद्ध होते हुए भी देह में उससे दुगुना था। अतएव तरन्नुम ने उससे झगड़ा करना ठीक नहीं समझा और चुपचाप खिसक गया। इस पर भी वह नादिरा का विचार छोड़ नहीं सका। वह जब भी कहीं उसको देख लेता, शेर गुन-गुनाने लगता।

नादिरा उसकी कविता सुन मस्त हो जाती थी। इसी प्रकार दिन बीत रहे थे। तरन्नुम और नादिरा एक-दूसरे के समीप आते जा रहे थे। तरन्नुम ने पीरमुहम्मद के घर जाना बन्द कर दिया था। नादिरा ने सुअवसर जान शौक से पूछा, "बाबा ! तरन्नुम मियाँ आजकल यहाँ नहीं आते, क्या तुम्हारा उससे झगड़ा हुआ है ?"

"बेटी ! वह छटा हुआ दस नम्बर बदमाश है। उससे तुमको बात नहीं करनी चाहिए।"

नादिरा इस चेतावनी से चुप तो हो गई, परन्तु तरन्नुम के प्रति उसके मन में आकर्षण फिर भी थोड़ा बहुत बना रहा।

उसको अपनी माँ का अभाव प्रायः खटकता था। किन्तु वह नहीं जानती थी कि वह हिन्दू की सन्तान है।

एक दिन वह फूलों की माला गूँथ रही थी। अकेलापन उसके हृदय को खिन्न बना रहा था। पीरमुहम्मद अपने काम से गया हुआ था। नादिरा सोचने लगी कि आज बाबा घर आयेंगे तो वह यह जाने बिना उन्हें नहीं छोड़ेगी कि उसकी माँ कैसे चल बसी। क्यों अकेला छोड़ गई उसको फूल चुनने के लिए ? फूल भी आज उसको काँटे लग रहे थे। उसकी

आँखें जल-मग्न थीं।

वह अपने बाबा की प्रतीक्षा में अन्यमनस्क-सी बैठी रही। रात हो गई पर पीरू घर नहीं लौटा। नादिरा घबरा उठी। मुहल्ले में निस्तब्धता छाई थी। सब लोग निद्रा में लीन थे, परन्तु एक अकेली अबला भय से काँप रही थी। वह घबराई हुई तरन्नुम के घर की ओर भागी, उसका द्वार खटखटाया। द्वार को ताला लगा था। विवश अपने घर लौट आई। रात-भर करवटें बदलती रही। भय और चिन्ता ने सोने नहीं दिया उसको।

अगले दिन प्रातः वह खिन्न हृदय गुमसुम बैठी थी कि पड़ोस के घर से एक बुढ़िया की आवाज़ आई, "पीरू! ओ पीरू!! आज फूल नहीं दिये?"

जब उत्तर नहीं मिला तो बुढ़िया ने पूछा, "पीरू घर में नहीं है, नादिरा?"

"बाबा कल से नहीं आये, खालाजान!" नादिरा ने भर्राई हुई आवाज़ में उत्तर दिया।

इसी समय तरन्नुम नादिरा के घर के पास से गुज़रा और गुनगुनाता हुआ आगे निकल गया। नादिरा ने उसको पुकारा, "तरन्नुम मियाँ!"

तरन्नुम वापस लौट आया। "तुमने मुझे पुकारा, नादिरा!" उसने पूछा।

"हाँ, बाबा कल से नहीं आये।"

"चाचा नहीं आया? तुम रात को अकेली रहीं?"

नादिरा सिसकने लगी। तरन्नुम उसके घर के भीतर चला आया, उसको प्यार से सांत्वना देने लगा।

पीरमुहम्मद का कुछ पता नहीं चल सका। तरन्नुम का कहना था कि पुलिस भी उसका पता नहीं लगा सकी। पुलिस का खयाल है कि उसे किसी ने मार डाला है।

नादिरा के जीवन में अन्धकार छा गया था। तरन्नुम ने उसको सांत्वना

देते हुए कहा,"तुम क्यों रोती हो ! चलो मेरे साथ । खुदा को जो मंजूर था, हुआ । इन्सान के बस में कुछ नहीं । यह हुसन-ओ-रुनाई रोने के लिए नहीं है । दुनिया की सब खुशियाँ तुम्हारी कदमबोसी करेंगी । तुम अच्छी तरह सोच लो । मैं कल फिर आऊँगा ।'' इतना कह तरन्नुम विदा होगया । नादिरा अपनी अवस्था पर गम्भीरतापूर्वक विचार करती रही ।

अगले दिन नादिरा तरन्नुम के साथ जाने के लिए तैयार हो गई । दोनों को मुहल्ले से एकाएक ग़ायब होते देख मुहल्ले वालों में परस्पर खुसरफुसर होने लगी । कई अनुभवी व्यक्तियों ने तो यहाँ तक कह दिया कि तरन्नुम ने ही पीरू का सफाया करवाया है । अब उसकी लड़की को लेकर रफूचक्कर हो गया है । इस पर भी वे प्रसन्न थे कि अच्छा हुआ नादिरा चली गई, अन्यथा एक खूबसूरत दोशीज़ा का मुहल्ले में अकेला रहना मुहल्ले वालों के लिए आफ़त खड़ी कर देता ।

तरन्नुम नादिरा के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा । नादिरा को भी उसकी संगत में विशेष आनन्द की अनुभूति हुई । शनैः-शनैः यौवन का प्रारम्भिक उल्लास मन्द पड़ा तो नादिरा नई-नई आवश्यकताएँ बताने लगी । तरन्नुम की जेब में पैसे नहीं थे । वह अपनी मित्र-मण्डली से एक नया ग्राहक नित्य अपने घर लाने लगा । पहले तो नादिरा संकोच करती रही, परन्तु जब उसको नित्य नये उपहार मिलने लगे तो धीरे-धीरे इस जीवन को ही जीवन समझने लगी । तरन्नुम उसका पथ-प्रदर्शक बन गया ।

इस प्रकार जहाँ तरन्नुम को आर्थिक लाभ होने लगा, वहाँ नादिरा उसको अपना हितैषी विचार करने लगी ।

परन्तु यह अवस्था स्थिर नहीं थी । नादिरा को कुछ दिनों में ही आभास हो गया कि सब उसके सौन्दर्य और शरीर के ही ग्राहक हैं । उस पर रुपयों की वर्षा होती । नित्य नये सुन्दर कपड़े वह पहनती । खूब अच्छे-से-अच्छा भोजन खाती । तरन्नुम उसको मोटी आसामियों को फँसाने का ढंग बताता । नाना प्रकार की गोलियों का प्रयोग नादिरा

करती। वह जानती थी कि जब तक वह गर्भ-धारण करने से बची रहेगी, तब तक सब उसका मान करते रहेंगे। वह अपने स्वास्थ्य और सौन्दर्य की ओर विशेष ध्यान देने लगी।

इस पर भी एक बात सदैव उसके मन को कचोटती। एक नवयुवती के पहली बार किसी नवयुवक के सम्पर्क में आने की कल्पना अर्थात् विवाह के विषय में विचार करने पर जो गुदगुदी उसके मन में इस अपमानजनक जीवन में आने से पूर्व हुआ करती थी, वह आनन्द अब नादिरा को नहीं मिलता था। वह कल्पना ही भिन्न थी। वह सोचा करती थी उसका विवाह होगा, वह सुन्दर-सुन्दर वस्त्रों और आभूषणों से लदी अपने प्रियतम की प्रतीक्षा करेगी, मद-भरे नयनों से उसको निहारेगी। मित्रों और सम्बन्धियों के घर दावतों पर उसे और उसके पति को आमंत्रित किया जायेगा। सुहाग की वे आनन्दमय रातें कितनी उल्लासपूर्ण होंगी! कितने आनन्द के होंगे वे दिन और रातें! उसका पति उसके सुन्दर मुखड़े को निहारेगा तो वह गद्‌गद् हो जायेगी। कितना रस होगा उस मिलन में!

यह थी नादिरा की कल्पना। किन्तु वह फँस के रह गई एक दलाल के चंगुल में। तरन्नुम ने उसको आश्रय तो दिया। उसने भी क्षणिक आनन्द अनुभव किया। अन्त में वह क्या बन गई? एक वेश्या—शरीर बेचने वाली। अपने रूप-लावण्य का सौदा खुले बाज़ार में बैठकर करने वाली। इसके लिए कौन उत्तरदायी था? वह स्वयं या तरन्नुम? नादिरा प्राय: विचार किया करती।

जब तरन्नुम का मन नादिरा से उचाट हो गया तो वह उससे तटस्थ रहने लगा। नादिरा ने बाज़ार में ही कोठा ले रखा था और वहाँ वेश्या-वृत्ति करने लगी थी। इन दिनों तरन्नुम पुन: मुमताज़ के सम्पर्क में आया। वे दोनों नादिरा को प्रलोभन दे देहरादून ले गए।

नादरा भी इस दलदल से निकलना चाहती थी। वैसे तो वह जब से बाज़ार में जा बैठी थी, तब से ही विशेष ध्यान रखती थी। गाना

बजाना उसने थोड़ा-बहुत सीख लिया था और बड़े-बड़े रईसों से मोटी रकम पा जाती थी। साधारण लोगों से वेश्यावृत्ति करने में वह बचने का यत्न करती।

तरन्नुम ने उसको देहरादून चलने का सुझाव दिया तो वह राजी हो गई।

तेरह ० ० ०

जब से मुमताज़ नादिरा को लेने लखनऊ गई थी, सोहन अपनी स्थिति पर विचार करता रहा था। उसको लन्दन में बीते मधुर दिनों की याद आने लगी। कितनी लगन से वह पढ़ाई करता था! कितने अरमान थे उसके मन में कि भारत लौटकर एक सफल वैज्ञानिक के रूप में नए-नए अन्वेषण करेगा! जब वह सफल वैज्ञानिक विख्यात हो जाएगा तो विवाह कर लेगा। उसकी सुन्दर पत्नी होगी, बच्चे होंगे और आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करेगा।

यह थी उसकी आकांक्षा और उसका एकमात्र स्वप्न। परन्तु भारत पहुँचकर उसको ऐसे लगा कि स्वप्न स्वप्न ही था। नींद खुलने पर सब-कुछ प्रकाश में विलीन हो गया। श्रीगणेश ही ठीक नहीं हुआ था। अपने पिता का व्यवहार, मुमताज का उसके जीवन में हस्तक्षेप, माला का उसके जीवन में आना और दूर चले जाना, फिर विनोद का विवाह इत्यादि। अनेक उतार-चढ़ाव उसने दो वर्ष में देखे। परिणामस्वरूप उसके मन में कई विकार उत्पन्न हो गए। एक साधारण व्यक्ति की तरह काम के वशीभूत हो, वह अब परिस्थितियों में उलझ गया था, जो मुमताज़ सदृश चरित्रहीन स्त्री उत्पन्न करने में सहायक हो रही थी। वह मनन

करता, उसको अब क्या करना चाहिए ? इसी उधेड़बुन में लगा हुआ था कि मुमताज़ और तरन्नुम नादिरा के साथ आ पहुँचे।

नादिरा का अप्रतिम सौन्दर्य देख सोहन चकित रह गया। सेव की भाँति लाल कपोल और नितम्बचुम्बी सूक्ष्म केश देख तो सोहन को रोमांच हो आया। इस पर भी उसका मन उससे पूछता—क्या यह ठीक हो रहा है ? नादिरा मुमताज तथा माला दोनों से सुन्दर है। क्या उसके साथ विवाह करने से उसका जीवन सुखी हो जायेगा ? क्या पिताजी की स्वीकृति आवश्यक नहीं ? इन प्रश्नों का उत्तर उसकी बुद्धि उसे नहीं दे सकी।

सोहन के पास दो कमरों का मकान तो था ही। मुमताज़, नादिरा और तरन्नुम ने एक बड़े कमरे में डेरा जमाया। भोजन समाप्त हुआ तो इधर-उधर की बातें होने लगीं। पश्चात् सब सोने के लिए अपने-अपने कमरों में चले गए। सोहन अपने पलंग पर लेटा अपने भविष्य की रूपरेखा बना रहा था कि नादिरा ने कमरे में पदार्पण किया। उसने भूमि की ओर देखते हुए नम्र स्वर में पूछा, "कनीज़ के आ जाने से आपके आराम में ख़लल तो नहीं पड़ा ?"

"आओ नादिरा ! बैठो।" सोहन ने कहा।

"आपा ने आपके लिए दूध गर्म करके भेजा है।" नादिरा ने दूध का गिलास उसके सामने रखते हुए कहा।

सोहन नादिरा के मुख पर देखने लगा। नादिरा अपने नए स्वामी की आँखों में देखती रही। उसको यह घरेलू वातावरण भला लग रहा था। उसे सोहन में वे सब गुण दिखाई दिए जो एक आदर्श पति में होने चाहिए। उसके हृदय में सोहन के प्रति अनुराग उत्पन्न हो गया।

"क्या देख रहे हैं ? दूध पीजिए। ठण्डा हो जाएगा।"

"तुम बैठ जाओ न !"

"नहीं। मैं ऐसे ही ठीक हूँ।"

"क्या आपा ने ऐसा सिखाया है ?"

"नहीं ! मैं खुद······"

"ओह ! समझ गया ।" सोहन ने निःश्वास छोड़ते हुए कहा, "तुम मुमताज़ के कहने पर यहाँ आई हो वरना तुम मेरी रफ़ीके-हयात बनना नहीं चाहतीं ।"

"नहीं, मेरे आका ! यह बात नहीं ।" नादिरा सोहन के चरणों में बैठ गई । शीश झुकाकर बोली "मेरा कुछ खो गया है । मैं होश में नहीं हूँ ।"

"क्या खो गया है, मैं भी तो जानूँ ?"

"दिल ।"

"तो ढूँढो, यहीं कहीं होगा । शायद ढूँढने से मिल जाए ।"

नादिरा की हँसी निकल गई ।

"तुम हँस रही हो, नादिरा !"

"जी हाँ ! आपका भोलापन और सादगी देखकर । दिल आपने चुरा लिया है और मुझसे मज़ाक कर रहे हैं कि ढूँढ लूँ । कितने भोले बनते हैं आप !"

"सच !" सोहन ने नादरा को अपनी ओर खींचा । वह ऐसे उसकी गोद में लुढ़क पड़ी जैसे उसमें प्राण ही न हों । वह सोहन की गोद में सिर रख उसके मुख को निहारने लगी ।

आज नादिरा को वास्तव में कुछ हो गया था । वह आई थी सफल अभिनय करने, किन्तु उसका अन्तर सोहन के लिए तड़प उठा था । उसको ऐसा लगा जीवन में जिस वस्तु का अभाव अनुभव कर रही थी, वह उसको मिल गई है । कितनी देर तक वह उसके मुख पर निहारती रही । सोहन ने उसके अधर चूमे तो वह आँखों में आँसू भरकर बोली, "क्या आप मुझसे जिन्दगी-भर प्यार कर सकेंगे मेरे आका !"

"क्यों नहीं ? तुमको शक क्यों हुआ ?"

नादिरा मौन हो गई । उसके मन में द्वन्द्व चल पड़ा । वह अब तक कैसा नारकीय जीवन व्यतीत करती रही थी । काश वह तरन्नुम के सम्पर्क में न आई होती ! वही राक्षस उसको एक भोले-भाले इन्सान से धोखा

करने के लिए विवश कर रहा था। वह भी धन के प्रलोभन में फँस यहाँ चली आई। नादिरा के मस्तिष्क में बवंडर उठ रहा था। जीवन की एक-एक घटना चलचित्र की भाँति उसकी आँखों के सामने घूम गई। उसकी आँखों से अश्रुधारा बह निकली। मुख से अनायास निकल गया, "काश हमारी बहुत पहले मुलाकात हुई होती!"

"तुम रो क्यों रही हो, नादिरा? तुम्हें कोई दुःख है?" सोहन ने उसे आलिंगन करते हुए पूछा।

"छोड़िए, अब मैं जाती हूँ। आपा इन्तज़ार कर रही होंगी।"

नादिरा जाने लगी तो सोहन ने उसका हाथ पकड़कर पूछा, "नाराज़ हो गई क्या?"

"नहीं, नाराज़ हों मेरे दुश्मन!"

"तो रोने से मतलब? क्या तुमको जबरदस्ती लाया गया है?"

"नहीं।" नादिरा पुनः रोने लगी। सोहन कुछ समझ नहीं सका।

"क्या तुम किसी और से वायदा कर चुकी हो? मामला क्या है? कोई राज़ है जो तुम छिपा रही हो?"

"आपसे बढ़कर मुझ बदनसीब को अच्छा शौहर कहाँ मिलेगा? मैं आपकी खिदमत कर आपको खुश रख सकूँ, यही मेरी ख्वाहिश है।"

"तुम कितनी अच्छी हो, नादिरा!" सोहन ने उसका हाथ चूम लिया।

"मैं अच्छी नहीं हूँ, आप बहुत अच्छे हैं।" इतना कहकर नादिरा चली गई।

नादिरा के इन दो शब्दों में उसके समस्त जीवन की कहानी छिपी थी, किन्तु सोहन इससे सर्वथा अनभिज्ञ था। वह बताने की इच्छा न रखती हुई भी बहुत-कुछ बता गई थी। फिर भी सोहन के लिए यह पहेली ही थी।

रात-भर नादिरा सोहन के विषय में ही सोचती रही। आँखें मूँदे वह मन में सोहन की प्रतिमा ही देख रही थी।

वह विचार करती रही कि उसमें एकाएक परिवर्तन कैसे आ गया।

है। क्या वह सोहन को स्थायी रूप में अपना शौहर बनाने में सफल हो जाएगी ? तरन्नुम और मुमताज़ तो उसके द्वारा सोहन के पिता की सम्पत्ति हड़पना चाहते हैं। यदि वह उनकी नीति का समर्थन कर, उसका ही अवलम्बन करेगी तो वह अपने शौहर से ही धोखा करेगी। सोहन को यह रहस्य प्रकट हो गया तो वह उससे घृणा करने लगेगा। वह सोहन की दृष्टि में धोखेबाज सिद्ध होने पर कहीं की न रहेगी। उसकी आत्मा इस प्रकार के भविष्य की कल्पना कर तड़प उठी। वह पुनः वेश्यावृत्ति करने के लिए तैयार नहीं थी। ऐसा नारकीय जीवन व्यतीत करना नादिरा को रुचिकर नहीं था। वह तो केवल यही चाहती थी कि सोहन उससे विवाह कर ले और वह एक प्रतिष्ठित स्त्री की भाँति उसके समाज का अंग बन जाए।

यह स्वप्न सुन्दर और मधुर होते हुए भी पूर्ण हो सकेगा ? नादिरा के मस्तिष्क में बार-बार यही प्रश्न उठता था।

एक सफल वेश्या के रूप में भी उसने अनुभव किया था कि किसी भी बड़ी आसामी को फाँसने के लिए जो योजना वह तरन्नुम के साथ मिलकर बनाया करती थी, तब तक उसकी सफलता में उनकी आशंका बनी ही रहती थी, जब तक अन्त में वे आशातीत सफलता प्राप्त नहीं कर लेते थे। उनके मन में सन्देह बना ही रहता कि किसी क्षण वह आसामी फिसल जाए और वे उसका मुँह ताकते रह जाएँ। बिना अधिक परिश्रम किये किसी अन्य व्यक्ति की जेब से धन निकालकर अपनी जेब में डालना कोई सरल कार्य नहीं, यद्यपि उसको प्राप्त करने के लिए नादिरा अपने हाड़-चाम के शरीर को नचाती, गाती और अपनी सम्मोहिनी शक्ति का प्रयोग करती थी। इस पर भी हृदय से ये सब बातें लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं रखती थीं।

इसी अनुभव के आधार पर वह सोहन को फँसाने आई थी, परन्तु देहरादून पहुँचते ही उसका हृदय डाँवाडोल हो गया। वह गृहस्थ-जीवन के सुख के स्वप्न लेने लगी।

एक वेश्या के लिए गृहस्थ-सुख की कामना करना, असम्भव न होते

हुए भी, उसके मार्ग में कठिनाइयाँ बहुत थीं। इन्हीं कठिनाइयों की कल्पना कर नादिरा का मन मसोस रहा था और वह सो न सकी। इस पर भी वह दृढ़-संकल्प थी कि वह धन का लोभ छोड़ सच्चे हृदय से सोहन को जीतने का यत्न करेगी और समय आने पर अपनी आत्मकथा उसको बता देगी। आत्म-समर्पण के अतिरिक्त उसके लिए कोई अन्य मार्ग नहीं था। वह अपनी जीवन-नैया भँवर में भगवान् के आश्रय छोड़ देना चाहती थी। वह आँसुओं और कठिनाइयों के जीवन को वेश्यावृत्ति पर प्राथमिकता देने को तैयार हो गई थी।

तरन्नुम और मुमताज़, दोनों ने करवट बदली तो उनकी दृष्टि टकरा गई।

"तुम भी जाग रहे हो ?" मुमताज़ ने धीमे स्वर में पूछा।

"हाँ। नींद नहीं आती।"

"नादिरा कब आई ? मेरी तो आँख लग गई थी। मैंने उसको आते नहीं देखा।"

"बहुत देर हो गई है उसको सोये हुए।"

"ओह ! तभी तुम परेशान हो ! क्या नादिरा की संगत के लिए दिल बेकरार हो रहा है ?"

"यह बात नहीं, मुमताज़ ! तुमको मालूम होना चाहिए कि मैं पहला मर्द था, जो उसको अपने इशारों पर नचा सका। जब मेरे सब अरमान पूरे हो गए तो उसकी जवानी और हुसन से जहाँ दोस्तों का दिल बहलाया, वहाँ उसकी जिन्दगी को पुरलुत्फ बना दिया। उस पर दौलत बरसने लगी।"

"कहाँ पा गए थे तुम इस हसीना को।"

"पहले रोशनी गुल कर दो।"

मुमताज़ ने उठकर बत्ती बुझा दी। उसने नादिरा के मुख पर दृष्टि-पात किया। उसके विचार से वह गहरी नींद सो रही थी। परन्तु नादिरा अपने विषय में वार्तालाप आरम्भ होते सुन सतर्क हो गई थी और आँखें

मूंदे सब-कुछ सुन रही थी।

बत्ती बुझने से कमरे में घटाटोप अँधेरा छा गया। मुमताज़ अपने बिस्तर पर जाने लगी तो तरन्नुम ने उसका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। उसके कपोलों का चुम्बन लेते हुए उसने कहा, "तुम पूछ रही थीं न कि नादिरा मुझको कैसे मिली ?"

"हाँ ! जब तुमने मुझे इसकी बहन बनने की राय पहले-पहल यहाँ दी थी तो मैं समझी थी कि तुम किसी मामूली हुसन-ओ-शबाब की मलिका के बारे में कह रहे हो। मुझे उम्मीद नहीं थी कि तुम ऐसी गजब की खूबसूरत छोकरी को यहाँ लाने में कामयाब हो जाओगे। मैं इसकी सारी कहानी सुनना चाहती हूँ। मालूम होता है सोहन पहली मुलाकात में ही इस पर मस्त हो गया है। तभी बहुत देर उसके पास बैठी रही है।"

"हमारी तरकीब कोई ऐसी-वैसी है क्या ?" तरन्नुम ने मुमताज़ का आलिंगन करते हुए कहा।

"अब छोड़ो भी ! पहले बताओ नादिरा की पहली ज़िंदगी के बारे में।"

"दर हकीकत यह हिन्दू की औलाद है। इसी के फज़ल से अगर खुदावन्दताला की उमत में इज़ाफा हो सके तो इससे बढ़कर सवाब नहीं होगा। इसके अलावा बहुत बड़ी जायदाद भी हमारे हाथ में होगी।

"लखनऊ का एक बूढ़ा माली पीरमुहम्मद इसको ले आया था। उसके पड़ोस में यह रहती थी। माँ-बाप मर गए तो यह हसीन बुलबुल इस दुनिया में अकेली रह गई। उस वक्त वह बच्ची ही थी। माली से वह पहले से ही घुल-मिल गई थी। बेसहारा होने पर पीरू इसको लेकर हमारे मुहल्ले में आ गया। मेरी उससे दोस्ती हो गई। सारा किस्सा उसने मेरे चाचा को बता दिया। चाचा मरने से पहले मुझ को नसीहत कर गया था कि नादिरा पर नज़र रखना, हो सके तो उसको अपने पास रख लेना।

"मैं उस वक्त दसवीं जमात में पढ़ता था। जब नादिरा जवान हो गई और मैं भी स्कूल छोड़ शायरी करने लगा तो मैंने पीरू माली से नादिरा

के बारे में जिक्र छेड़ दिया। मेरा खयाल था कि नादिरा पीरू की अपनी बेटी तो है नहीं। इसलिए वह उसको किसी मोटी आसामी को सौंपकर अपनी जेब गरम करेगा। मेरी जेब में पैसे नहीं थे। मैंने पीरू से कह दिया कि वह तो बहुत बड़ी रकम कमाने की उम्मीद लगाये बैठा होगा वरना मैं ही नादिरा को रख लेता। इससे पीरू मुझसे बिगड़ गया और हमारी दुआ-सलाम भी बन्द हो गई। लेकिन जब नादिरा को मैं देखता तो मुझमें अपने चाचा की बात पूरी करने की ख्वाहिश बढ़ती जाती।

"इसलिए जब भी मैं नादिरा के घर के पास से गुजरता या उसका कहीं दीदार हो जाता तो मैं शेर गुनगुनाने लगता। मैं भी महसूस करता था कि नादिरा मेरी तरफ खिंच रही है। कभी आँखें चार हो जातीं तो मुस्करा देती और फिर अपनी मोटी-मोटी आँखें झुका देती। उसकी आँखों में मुझे इश्क की झलक दिखाई देती। दिन गुजरते गए और नादिरा मेरे नजदीक आती गई। पीरमुहम्मद हमारे प्यार के रास्ते में चट्टान की तरह था, जिसको फोड़ देने की मैं हमेशा तरकीबें सोचा करता था। मुझको भी नादिरा से उन्नस हो गया था। उससे कभी बातें नहीं हुई थीं। इसलिए दिल में मैं भी डरता था कि अगर उसको अपने साथ भाग चलने के लिए कहूँ तो वह रूठ ही न जाये। मुझको उसे हासिल करने का एक ही ढंग समझ आया कि पीरू को रास्ते से हटा दिया जाये। मैंने एक तरकीब सोची और कामयाब हो गया।

"नादिरा को ढाढस दे मैं ले गया। वह मेरे एहसान के नीचे दबकर वही कुछ करती रही जो मैं कहता था। आगे तो तुमको मालूम ही है।"

तरन्नुम बातें तो धीरे-धीरे कर रहा था, परन्तु नादिरा ने सब-कुछ सुन लिया। उसका हृदय घृणा और क्रोध से भर गया। शरीर में कँप-कँपी आरम्भ हो गई। उसके मन में आया कि किसी तेज खंजर से इस भेड़िये का सीना चीर डाले। किन्तु वह तत्काल अपने उद्गारों पर नियंत्रण कर लेटी रही। उसको समय पर सब-कुछ पता चल गया था। जो बात पीरमुहम्मद ने अठारह वर्ष तक उसका पुत्री की भाँति पालन-पोषण करने

पर भी उसको नहीं बताई थी, वही रहस्योद्घाटन तरन्नुम ने मुमताज़ के सम्मुख कर दिया था। नादिरा अपने उद्गारों से पिसती रही।

प्रातःकाल वह बिस्तर से उठी तो तरन्नुम और मुमताज़ सोये हुए थे। उसका मन बोझिल था। आँखें सूजी हुई दिखाई देती थीं। वह सोहन के कमरे में आ धमकी।

सोहन के कमरे का द्वार खुला था। दूध का गिलास ज्यूँ-का-त्यूँ मेज़ पर रखा था। सोहन गहरी नींद सोया हुआ था। वह सोहन के चरणों में आकर लेट रही। उसे ऐसा करने से बहुत शान्ति मिली। वह वर्तमान अवस्था में कोई योजना अपने मस्तिष्क में नहीं रखती थी। वह विचार करती हुई सोहन के जागने की प्रतीक्षा करने लगी।

सोहन जागा तो नादिरा को अपने पाँव में बैठी देख, जहाँ विस्मय में उसका मुख देखने लगा, वहाँ मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुआ। नहा-धोकर नाश्ता कर प्रसन्नवदन कार्यालय को चला गया।

शाम को सोहन घर लौटा तो नादिरा को मुस्कराते हुए अपनी प्रतीक्षा करते देखा। मुमताज़ और तरन्नुम घूमने चले गए थे। चाय पीते समय नादिरा ने कहा, "आपा कह रही थी कि आप मुझसे निकाह पढ़ाने के लिए राज़ी हो गए हैं।"

"मैं आज दिन-भर यही सोचता रहा हूँ। कोई दूसरा तरीका नहीं, जिससे हमारी शादी भी हो जाये और हम दोनों को वह शादी का ढंग भी मंजूर हो।"

"यह तो बहुत मामूली बात है। मियाँ-बीवी राज़ी तो क्या करेगा काज़ी! आप निकाह पढ़ाना नहीं चाहते तो किसी पण्डित को बुलवा लीजिए। मेरे लिए एक ही बात है।"

"तो तुम मुसलमानी ढंग से शादी नहीं करना चाहतीं?" सोहन ने पूछा।

"मैं तो आपको पाना चाहती हूँ।"

"तुम्हारी औलाद का क्या होगा?"

"वह तो आपकी औलाद ही कहलायेगी। बाप के नाम से ही खानदान चलता है। अगर आप पसन्द करेंगे तो मैं भी अपना हिन्दू नाम रख लूँगी। मेरा मजहब तो आपका प्यार है। मैं आपकी ख़िदमत करती रहूँ, आप मेरे प्यार की कदर करते रहें, यही मेरी तमन्ना है। बाकी हिन्दू, मुसलमान, सिख, ईसाई, ये सब खुदा के बन्दे हैं। मरना सब ने है। मुझको इन बातों का ख़याल नहीं आता। बस ख़याल आता है तो आपका—आपकी खिदमत करूँ, आप खुश रहें। मुझ कनीज़ को अपने दिल में जगह दीजिए।"

"नादिरा, तुम मेरी हो। मैं तुमसे ब्याह करूँगा।"

परन्तु यह विवाह हो नहीं सका। सोहन को विनोद का तार मिला। सोहन के पिता की दशा अति चिन्ताजनक थी। उसको शीघ्र दिल्ली बुलाया गया था।

सोहन दुविधा में पड़ गया। उसके मस्तक पर चिन्ता की रेखाएँ उभर आईं।

चौदह ०००

किशोरीलाल कपूर की चिन्ताजनक अवस्था की सूचना जब सोहन ने मुमताज़ को दी तो वह रो पड़ी।

तरन्नुम समझता था ये मगरमच्छ के आँसू हैं। उसे तो इस बात की भी चिन्ता लग गई थी कि अब उनकी योजना का क्या होगा? सोहन तो दिल्ली जाने की तैयारी करने लगा। परन्तु तरन्नुम और मुमताज़ में मिस्कोट होने लगी। अन्त में यह निर्णय हुआ कि वह भी दिल्ली जाएगी। अभी कुछ दिन पहले ही उसने कपूर को पत्र लिखा था कि वह सोहन और

उसकी पत्नी के पास ठहरेगी। कठिनाई इस बात की थी कि नादिरा का क्या बनेगा।

सबसे अधिक चिन्तित तरन्नुम दिखाई देता था। उसको सन्देह था कि कहीं मुमताज़ दिल्ली जाकर पुनः कपूर की सेवा-शुश्रूषा में लग गई तो वह हाथ मलता रह जायेगा। इस पर भी वह विचार करता था कि यदि कपूर मर गया तो वह मुमताज़ और नादिरा दोनों से अपना भाग मांगेगा। फिर वह भी लखनऊ लौटने की अपेक्षा दिल्ली में ही टिक जायेगा। अतः उसने मुमताज़ से कहा, "तुम दिल्ली पहुँचकर मुझे कपूर की हालत से इत्तला देना। मैं नादिरा को लेकर लखनऊ जाऊँगा। तुम्हारा तार आते ही हम दिल्ली पहुँच जायँगे।"

नादिरा यह वार्तालाप सुन रही थी। उसने कह दिया, "मैं लखनऊ जाना नहीं चाहती।"

"तो कहाँ जाओगी ?" तरन्नुम ने क्रोधित मुद्रा धारण करते हुए पूछा।

"जहाँ मेरा मन करेगा जाऊँगी। लेकिन तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगी।"

"ओह ! चींटी भी पर निकालने लगी ! तुम अपनी औक़ात भूल रही हो नादिरा ! तुम्हारी हैसियत एक तवायफ़ से बढ़कर कुछ भी नहीं। मेरे साथ नहीं चलोगी तो भूखी मरोगी क्या ?"

नादिरा हँसने लगी। उसकी हँसी में व्यंग था। उसने तरन्नुम के मुख पर देखते हुए कहा, "तुम अपनी फ़िक्र करो, तरन्नुम मियाँ ! मैं अब पेशा नहीं करूँगी और न ही तुम्हारे साथ जाऊँगी। मेरा यह आखिरी फ़ैसला है।" नादिरा इतना कह उठकर चली गई।

"मालूम होता है इस छोकरी को सोहन से इश्क हो गया है।" मुमताज़ ने कहा।

"मैं इश्क का भूत इसके सिर से अभी उतार दूँगा। यह छोकरी मुझे समझती क्या है !" तरन्नुम की आँखों में क्रोध और हत्यारे की-सी चमक थी। मुमताज़ भी काँप उठी। उसने तरन्नुम का हाथ पकड़ते हुए कहा, "तहम्मल से काम लीजिए, तरन्नुम साहब ! गुस्से से काम लेने पर कहीं

हमें नाकामयाबी का मुँह न देखना पड़े।"

"यह लौंडियाँ हाथ से निकल गई तो खाक कामयाबी होगी।"

"मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता। देखो कपूर अपनी वसीयत में क्या लिखता है। मैं तुमसे वायदा करती हूँ कि मुझको जो कुछ भी मिलेगा, आधा हिस्सा तुम्हारा होगा।"

तरन्नुम ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसका मस्तिष्क ठीक काम नहीं कर रहा था। उसने सिगरेट निकालकर सुलगा लिया।

नादिरा सोहन के कमरे में चली गई थी। वहाँ सोहन अपना सामान बाँध रहा था। नादिरा ने उसके कान के समीप अपना मुख ले जाकर कहा, "मैं भी साथ चलूँगी।"

"मैं जल्दी लौट आऊँगा। तुम यहाँ रहो।"

"यहाँ मेरी जान ख़तरे में है।"

"क्यों?"

"आप नहीं जानते। मेरे मोहसन! जिसको आप मेरा सरपरस्त और अपना हमदर्द समझ रहे हैं, वह इन्सान के वजूद में भेड़िया है।" भेड़िया कहते हुए नादिरा का गला भर आया था।

सोहन ने उससे आलिंगन करते हुए पूछा, "क्या मामला है, नादिरा? तुमको किससे डर लगता है?"

"मुझे नादिरा न पुकारा करें। नादिरा बहुत बेग़ैरत लड़की थी। कोई भला-सा नया नाम रख लीजिए।"

"बताओ, किस नाम से पुकारा करूँ तुमको?"

"जो आपको अच्छा लगे।" नादिरा ने उत्तर दिया। सोहन विचार करने लगा। नया नाम रखने की बात में सोहन का मुख्य प्रश्न विलीन हो गया था। नादिरा ने उसको बताया नहीं कि वह तरन्नुम से भय खाने लगी है। नादिरा ने क्षण-भर प्रतीक्षा करने के पश्चात् पूछा, "रजनी नाम आपको पसन्द है?"

"तो तुम हिन्दू बनना चाहती हो?"

"मैं हूँ भी हिन्दू की सन्तान।" नादिरा ने साहस बाँधकर कहा।

"तुम मुमताज की बहिन नहीं हो क्या ?"

"पहले बनी थी, अब नहीं हूँ। अब हमारे रास्ते अलग-अलग हैं। चलिए गाड़ी का समय हो रहा है। बातें तो रास्ते में भी हो जायँगी।"

"देखो नादिरा ! तुम..."

"फिर नादिरा।" नादिरा ने सोहन के मुँह पर हाथ रख उसे आगे बोलने से रोक दिया।

"अच्छा रजनी ! तुमने मुझे उलझन में डाल दिया है।"

"सब ठीक हो जाएगा। मैं आपकी हूँ और आप मेरे। बाकी आपको अपने दिमाग़ से सोचना चाहिए। आप मुझे यहाँ छोड़ जाएँगे तो कोई और आपकी अमानत पर हाथ साफ़ कर जाएगा।"

रजनी का संकेत तरन्नुम की ओर था। सोहन समझ गया। इस पर भी उसे विस्मय हो रहा था। उसकी अपनी अवस्था विचित्र थी। यदि वह नादिरा को साथ ले जाए तो उसको रखेगा कहाँ ? क्या उसका पिता उसको पतोहू के रूप में स्वीकार कर लेगा ? यह बात भी उसको हास्यास्पद लगने लगी कि उसके पिता को जब ज्ञात होगा कि मुमताज की बहन से उसने विवाह कर लिया है तो क्या वह अपने ही पुत्र से नवीन सम्बन्ध को पसन्द करेगा ? लोग भी सुनकर हँसेंगे और कहेंगे। पहले बाप ने एक बहन को घर में रखा था, अब बेटे ने दूसरी बहन से विवाह कर लिया है। दोनों बाप-बेटे ही ऐसे हैं। मुसलमानियाँ ही ले आए हैं। कदाचित् यही बात विचार कर नादिरा ने अपना नाम बदल लिया है। क्या उसको अपने पिता के सम्मुख असत्य भाषण करना चाहिए कि रजनी एक हिन्दू लड़की है और दोनों का प्रेम-विवाह हुआ है ? ऐसा करने में क्या मुमताज उसे सहयोग देगी ? कदाचित् उसको यह भी रुचिकर नहीं होगा कि उसकी बहन हिन्दू नाम से पुकारी जाए। इस पर भी उसके मन पर नादिरा के सम्मोहन का प्रभाव अधिक प्रबल था। सोहन बहुत देर तक उधेड़-बुन में लगा रहा।

—९

मुमताज़ और तरन्नुम, जो छिपकर सोहन और रजनी का वार्तालाप सुन रहे थे, कमरे में निस्तब्धता छा जाने पर एक-दूसरे का मुख देखने लगे। रजनी के अन्तिम शब्द कि 'कोई आपकी अमानत पर हाथ साफ़ कर जाएगा' सुन तरन्नुम के क्रोध का पारावार न रहा। उसने मुमताज़ से कहा, "मैं अभी इस छोकरी का काम तमाम किये देता हूँ। यह मुझसे भी धोखा कर रही है।"

"पागल हो गए हो। नादिरा दिल्ली जा रही है। मैं सब सँभाल लूँगी। तुम भी तो यही चाहते थे कि सोहन से वह शादी कर ले।"

"लेकिन वह तो उसकी राज़दार बन गई है और हमको फँसाने के लिए हमारा राज़ उसको बता देगी।"

"वह इतनी अनजान नहीं है। वह जानती है कि ऐसा करने से कहीं की न रहेगी।"

तरन्नुम सब-कुछ मुमताज़ पर छोड़, उससे कुछ रुपये ले, वहाँ से चला गया। मुमताज ने उससे वायदा किया कि वह उसको पत्र लिखकर पूर्ण स्थिति से अवगत करती रहेगी।

सोहन गम्भीरतापूर्ण विचार करने के पश्चात् रजनी के साथ स्टेशन की ओर जाने लगा तो मुमताज ने कहा, "सोहन! मैं भी चल रही हूँ। ख़ुदा जाने कैसे होंगे कपूर साहब! मुझसे बहुत बड़ी गलती हुई है। मुझको पहले ही दिल्ली लौट जाना चाहिए था।"

सोहन कुछ उत्तर न दे सका। तीनों रेलवे स्टेशन पहुँचे। अगले दिन दिल्ली पहुँचने पर पता चला कि कपूर कैंसर के ऑपरेशन के लिए अस्पताल में दाख़िल किया गया है। डॉ० विनोद विशेष रूप से उसकी देख-भाल कर रहा था।

सोहन अपने पिता की अवस्था पर अति खिन्न-हृदय था। पिता की शोचनीय अवस्था के साथ रजनी ने भी उसकी मानसिक स्थिति को अति डाँवाडोल बना दिया। उसने सोहन पर विश्वास कर अपनी पूर्ण आत्म-कथा सुना दी। इससे सोहन के मस्तिष्क में हलचल मच गई। उसको

मुमताज़ पर क्रोध भी आता। रजनी चुपचाप उसके मुख पर बदलते भावों को पढ़ रही थी। अब उसका मन हलका हो गया था। उसने आदि से अन्त तक अपनी जीवन-कथा, जितनी उसको स्मरण थी, सुनाकर कहा था, "मेरा ज़मीर आप-जैसे नेक इन्सान से धोखा नहीं कर सका। अब आप मुझ कनीज़ को अपने दिल में जगह दें या ना दें, आपकी मरज़ी। जिस दिन आप मुझे अपनी नज़रों से दूर हो जाने का हुक्म देंगे, उस दिन रजनी इस दुनिया में नहीं रहेगी।"

सोहन उद्विग्न मन विनोद के घर गया। वहाँ उसको सरोज और माला के दर्शन हुए। माला का विवाह हो चुका था। वह इलाहाबाद के एक वकील की पत्नी थी। सोहन ने अपने मित्र को सारा विवरण बताने के पश्चात् कहा, "मुमताज़ जहाँ मेरे पिता के लिए अभिशाप बनी, वहाँ मेरा जीवन भी बरबाद कर दिया। मैं पिताजी को उसका काला इतिहास सुनाना चाहता हूँ। यदि उन्हें अधिक दिन इस संसार में नहीं रहना तो वह यह तो समझ सकें कि मुमताज़ ने नागिन बन पिता और पुत्र दोनों को डसने का यत्न किया है।"

"सोहन! तुम इतने उतार-चढ़ाव देखने पर भी कुछ अनुभव प्राप्त न कर सके। तुम क्या समझते हो, तुम्हारे पिता कुछ जानते ही नहीं? जब तुम्हारे विवाह की बात उन्होंने मुझे बताई तो मैं समझ गया था कि तुम मुमताज़ के चंगुल में फँस गए हो। प्रमादी व्यक्ति का ऐसी परिस्थितियों का दास बन जाना कोई आश्चर्यजनक घटना नहीं।

"कपूर साहब ने अपनी वसीयत में मुमताज़ को एक पाई भी नहीं दी है। उन्होंने एक ट्रस्ट की स्थापना की है। मुझको उसका ट्रस्टी नियुक्त किया है। मैं इतना बड़ा उत्तरदायित्व सँभालने में संकोच करता था किन्तु कपूर साहब के आग्रह पर मुझे स्वीकार करना पड़ा।

"वसीयत में इस बात का भी उल्लेख है कि केवल दिल्ली की कोठी सोहन की सम्पत्ति होगी। उसका पुत्र हुआ तो वह सम्पत्ति का स्वामी होगा। उसके सज्ञान होने तक सम्पत्ति ट्रस्ट के अधीन रहेगी।"

सोहन को इससे कुछ सन्तोष हुआ। रजनी के विषय में उसने कोई बात नहीं की। उसने केवल इतना कहा, "पिताजी का ऑपरेशन सफल होगा न विनोद !"

"भाई ! यह असाध्य रोग है। आपरेशन के बाद पता चलेगा।"

सोहन की आँखें डबडबा आईं। उसको ऐसा आभास हुआ कि उसके पिता अब बच नहीं सकेंगे। वह अपना पूर्ण समय उनकी सेवा में बिताने लगा। मुमताज़ की उपस्थिति उसको बहुत अखरती थी।

मुमताज़ और रजनी दोनों उसकी कोठी में ही रह रही थीं। रजनी ने सोहन को सुझाव दिया कि उसको भोजन घर पर नहीं करना चाहिए। सम्भव है विष मिला दिया जाये। सोहन स्वयं भी ऐसा विचार करता था। दोनों ने भोजन होटल में करना शुरू कर दिया।

सोहन जब विनोद को मिलकर विदा हुआ तो सरोज ने विनोद से पूछा, "सोहन का विवाह नहीं हो सका क्या ?"

"होने वाला तो था, परन्तु उसके पिता की बीमारी के कारण रुक गया है।"

"मैंने आज सोहन को एक लड़की के साथ घूमते देखा था। मैं और माला चांदनी चौक गयी थीं। वे दोनों एक होटल से निकल रहे थे।"

"वही लड़की उसकी पत्नी बनने वाली थी।"

"तो समझ लो कि उनका विवाह हो गया है।"

"सोहन ने अभी अन्तिम निर्णय नहीं किया है।"

"क्या उससे कुछ निर्णय की आशा करते हैं आप ?"

"तुम उसके पीछे क्यों पड़ गई हो ? मैं समझता हूँ उसके संस्कारों में शैशव से ही कुछ दोष रहा है। उसके समस्त परिवार की वर्तमान अवस्था उन संस्कारों की प्रतिक्रिया मात्र ही तो है। आजकल जनसाधारण के लिए किसी प्रलोभन से बच सकना असम्भव हो गया है।"

"प्रलोभन में फँसना ही तो अपने धर्म से विमुख होना है।" सरोज ने कहा।

विनोद मौन हो गया। उसे स्मरण हो आया कि उसको भी कपूर ने आधी सम्पत्ति का स्वामी बनाने का प्रलोभन दिया था। परन्तु जब उसने वसीयत लिखवाई तो विनोद के मन पर लेशमात्र भी इसकी प्रतिक्रिया नहीं हुई थी। उसने क्षण भर विचार कर कहा, "सरोज! यह अपनी-अपनी जीवन-मीमांसा है। मुमताज देहरादून सोहन को बताने गई थी कि उसकी बहन आने वाली है। परन्तु वह तो आई नहीं, हाँ सोहन के लिए जीवन-संगिनी का प्रबन्ध उसने अवश्य कर दिया है।"

"मुझे तो ऐसे विवाह की सफलता पर सन्देह है।"

"तुम कृपया भविष्यवाणी मत किया करो। बात तुम्हारी सत्य निकल आयी तो सोहन बेचारा व्यर्थ में पिस जायेगा।"

"वह गलत राह पर जो चला है तो भटकेगा ही। आज सुदेश मुझ से मिलने आई थी। कह रही थी उसने अपने पति के विरुद्ध न्यायालय में प्रार्थना-पत्र दिया है कि वह अपने पति से सम्बन्ध-विच्छेद करना चाहती है। उसने भी तो समाज का नियम तोड़ बिरादरी से बाहर, विक्रमसिंह के सम्मोहन में फँस विवाह किया था। मैं तो इस प्रकार के कृत्यों को भावुकता ही मानती हूँ। कोरी भावुकता के कारण मनुष्य अपने कर्तव्य से शीघ्र विमुख हो जाता है।"

"तो तुम रजनी को समझा दो। यदि वह अपने धर्म को समझ सकी तो हम सोहन को गर्त में गिरने से बचा लेंगे।"

"ना बाबा! मैं इन कंजरों के सम्पर्क में नहीं आना चाहती। उसका कोई पुराना प्रेमी आपका भी शत्रु बन जायेगा।"

"तो सोहन को निस्सहाय छोड़ दिया जाये?"

"उसको रजनी का तिरस्कार कर देना चाहिए।"

विनोद हस्तक्षेप करने में कुछ लाभ नहीं समझता था। उसको अभी भी सन्देह था कि सोहन ठीक मस्तिष्क रखता है अथवा नहीं। यदि वह सुलझे हुए मस्तिष्क का स्वामी होता तो पहले ही इन लोगों से दूर रहता। उसका दिल्ली आकर अपने पिता से मिले बिना देहरादून लौट जाना और

पुन: मुमताज की शरण लेना, सिद्ध करता है कि किस प्रकार का चंचल और भावुक व्यक्ति है। अतएव विनोद चुपचाप प्रतीक्षा करने लगा कि सोहन जिस नौका में सवार हुआ है, वह भँवर पार कर किनारे लगती भी है या मँझधार में ही रह जाती है।

मुमताज ने वातावरण अपने प्रतिकूल देखा तो तरन्नुम को सूचित कर दिया। मुमताज को विश्वास हो गया था कि उनकी पूर्ण योजना विफल होती जा रही है।

किशोरीलाल के लिए अस्पताल में विशेष व्यवस्था करा दी गई थी। उसने एक कमरा किराये पर ले लिया था। उसका ऑपरेशन हुआ तो सोहन उसके पास रहा। रजनी कोठी में रही। वह नित्य कुछ समय के लिए अस्पताल आकर सोहन के पिता की कुशलक्षेम पूछ जाती थी। सोहन चिन्ता में डूबा रहता। डॉक्टरों ने कह दिया था कि वे निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकते कि कपूर बच जायेगा अथवा नहीं। ऑपरेशन के पश्चात् भी उसकी दशा शोचनीय थी।

एक दिन रजनी सोहन से मिलने अस्पताल में नहीं आई। सोहन भी अपने पिता को अकेला छोड़ जा नहीं सका। मुमताज वहाँ आ जाती थी, परन्तु उसको विश्वास नहीं होता था। उसको भय लग गया था कि मुमताज ही धन के लोभ में कुछ अनिष्ट न कर दे।

अगले दिन नौकर ने उसको अस्पताल में आकर सूचना दी कि कोठी पर पुलिस आई हुई है। नौकर बहुत घबराया हुआ था। सोहन ने उसको बाहर ले जाकर पूछा, "क्या बात है ?"

"उनका कहना है कि रजनी ने तरन्नुम नाम के किसी व्यक्ति की हत्या कर डाली है।"

सोहन स्तम्भित रह गया। डॉ० विनोद उस समय वहाँ नहीं था। उसने नौकर से कहा, "तुम जाओ, मैं अभी आता हूँ।"

सोहन विनोद को खोजने लगा और पश्चात् दोनों कोठी पर आ पहुँचे।

पुलिस कोठी के लॉन में मुमताज़ से पूछताछ कर रही थी। रजनी का कुछ पता नहीं था।

सोहन और विनोद आये तो पुलिस-इन्स्पैक्टर ने पूछा, "लखनऊ के एक शायर अब्दुल ख़ालिक तरन्नुम की हत्या के सिलसिले में हम जाँच करने आये हैं। रोशनआरा बाग़ में उसके पेट में किसी ने छुरा घोंप दिया है। हत्यारा तो अभी पकड़ा नहीं जा सका, मगर मरने से पहले उसके मुख से केवल इतना निकल पाया—'रजनी'। यही हमारे एक कान्स्टेबल का कहना है, जो उस समय लोगों को एकत्रित होते देख वहाँ पहुँच गया था।

"आगे जाँच करने पर हमें पता चला है कि दो दिन पहले रजनी नाम की एक स्त्री ने थाने में रिपोर्ट लिखवाई थी कि उसको तरन्नुम नाम के एक व्यक्ति से, जो लखनऊ से दिल्ली आ गया है, अपनी जान का ख़तरा है। उसने अपना नाम रजनी बताया था और इस कोठी का पता लिखाया था। इसलिए हम उस लड़की से पूछताछ करने आये हैं।

"इनका कहना है," इन्स्पैक्टर ने मुमताज़ की ओर संकेत कर कहा, "कि रजनी नाम की एक स्त्री यहाँ रहती अवश्य थी, जिसका असली नाम नादिरा है। उसको आप लखनऊ से ले आये थे। हम इस कोठी की तलाशी के वारण्ट लाये हैं ताकि इस केस की आगे जाँच हो सके।"

विनोद और सोहन ने तलाशी के वारण्ट देखे। उन्हें कोठी के भीतर आने की स्वीकृति दे दी। पुलिस ने एक घण्टा व्यय किया, परन्तु उन्हें कोई ऐसा चिह्न नहीं मिल सका, जिससे यह पता चलता कि हत्या पूर्ववत् योजना के आधार पर की गई है। इस पर भी तरन्नुम की हत्या रजनी ने की थी, क्योंकि वह ग़ायब हो गई थी।

पुलिस ने सोहन और विनोद के बयान लिये। सोहन ने पूर्ण इतिहास सच-सच बता दिया। परिणाम स्वरूप मुमताज को भी बन्दी बना लिया गया और सोहन को थाने बुलाया गया।

इन्स्पैक्टर किशोरीलाल कपूर के बयान लेना चाहता था, परन्तु

डॉक्टर ने उससे बात करने की अनुमति नहीं दी।

एक सप्ताह पश्चात् कपूर को बात करने की स्वीकृति मिली। सोहन मन-ही-मन प्रसन्न था कि उसके पिता का स्वास्थ्य सुधर रहा है। कपूर ने अपने बयान में बताया कि मुमताज उसकी रखेल थी और अपनी इच्छा से ही उसके पास रह रही थी। रजनी को वह नहीं जानता। अस्पताल में ही उसको पता चला था कि वह उसके पुत्र सोहन से विवाह की इच्छुक है। मुमताज उसको अपनी बहन बताकर उसका विवाह सोहन से कराने की इच्छा रखती थी। "इसलिए वह मेरे स्वस्थ होने तक कोठी में ही रह रही थी।

सोहन रजनी के विषय में चिन्तित था। उसको विश्वास हो गया था कि तरन्नुम उससे बलात्कार करना चाहता होगा और उसने उसकी हत्या की होगी। रजनी के एकाएक गायब हो जाने से तो सोहन का मन भी दुखी हो गया। वह कैसी भी थी—बुरी थी अथवा अच्छी, उसका पूर्व इतिहास कैसा ही रहा हो, फिर भी वह उसको हृदय से प्रेम करने लगी थी। उसने अपने पूर्व कुकर्मों का प्रायश्चित्त किया—पश्चात्ताप द्वारा। उसने सोहन को सब कुछ बता दिया था। तरन्नुम से उसको घृणा हो गई थी, इसलिए वह दया और सहानुभूति की पात्रा थी। सोहन हृदय से चाहता था कि उसका पिता पुलिस में अपने मेल-जोल के प्रभाव से रजनी को निर्दोष घोषित कराने में पूरा सहयोग दे। परन्तु रजनी का कुछ पता चलता, तभी कुछ हो सकता था। सोहन की व्याकुलता का पारावार नहीं था।

किन्तु यह व्याकुलता स्थायी दुख में बदल गई। रजनी को पकड़ने में पुलिस सफल हो गई थी। सोहन को पुनः थाने में बुलाया गया। पुलिस उसके द्वारा रजनी की पहचान करवाना चाहती थी।

सोहन ने उसको देखा और पहचाना। उसकी दयनीय अवस्था देख सोहन का मन रो दिया। रजनी ने अपने बयान में कहा था कि तरन्नुम उससे किशोरीलाल कपूर की कोठी पर मिलने आया था। वहीं उसको

वेश्या बनाने और फिर सोहन सदृश नेक व्यक्ति से धोखा करने के लिए उत्तरदायी है। जब उसको पता चल गया कि वह हिन्दू की सन्तान है और सोहन साधारण व्यक्तियों की भाँति दुर्बल मन का पुरुष है, उसकी इस मानसिक दुर्बलता का अनुचित लाभ, मुमताज़ और तरन्नुम दोनों मिलकर उठाना चाहते हैं, तो वह अपने भावी जीवन पर गम्भीरतापूर्वक विचार करने लगी। उसको तरन्नुम के इस घृणित कार्य पर खेद हुआ और वह उससे तटस्थ रहने लगी।

तरन्नुम जब उससे दिल्ली में मिला तो उसको विवश करने लगा कि वह कपूर की सम्पत्ति प्राप्त करने में उसकी सहायता करे। जब उसने तरन्नुम द्वारा तैयार किए किसी प्रकार के भी षड्यन्त्र में सम्मिलित होने से स्पष्ट इन्कार कर दिया तो मुमताज और तरन्नुम, दोनों ने मिलकर उसके मुँह में कपड़ा ठूँस उसको रस्सी से बाँध दिया। उसकी चेतना जाती रही। जब उसको होश आया तो वह बाग के पिछवाड़े एक खड्ड में पड़ी थी। वहाँ से वह उठी। सरकारी नल से पानी पिया। एक दयालु व्यक्ति ने उस पर दया कर उसे आठ आने पैसे दे दिए और बहुत कठिनाई से कोठी पर पहुँची। किन्तु वहाँ पुलिस एकत्रित देख भाग खड़ी हुई। आज वह पकड़ी गई है।

सोहन समझ गया कि यह बयान सर्वथा मनगढ़न्त है। इस पर भी वह चुप था।

इधर कपूर अस्पताल में पड़ा हुआ भी पूरा यत्न कर रहा था कि मुमताज और रजनी दोनों छूट जायँ। मुमताज़ चाहती थी कि वह पुलिस की गवाह बना ली जाये ताकि वह नादिरा को अपराधी सिद्ध कर सके। परन्तु वह सफल नहीं हो सकी। तरन्नुम की जेब से मुमताज़ का पत्र पुलिस को मिला था, जो उसने तरन्नुम को दिल्ली में लिखा था कि वह शीघ्र दिल्ली चला आये। उससे तो यह पता चलता था कि तरन्नुम और मुमताज किशोरीलाल कपूर के विरुद्ध कोई षड्यन्त्र रच रहे थे। इधर रजनी के लिए विशेष वकील की व्यवस्था की गई थी। सोहन दिन-रात

इसी प्रयास में, एक कर रहा था।

हत्या का आरोप सिद्ध नहीं हो सका और रजनी को छोड़ दिया गया। जब रजनी मुक्त कर दी गई और मुमताज के विरोध में सेठ किशोरीलाल कपूर ने अपने बयान में कुछ नहीं कहा तो उसको भी मुक्त कर दिया गया।

सोहन उनको उस दिन पुलिस स्टेशन लेने नहीं गया। उसका विचार था कि रजनी कोठी पर आ जायेगी। वह कोठी पर ही उसकी प्रतीक्षा करता रहा, किन्तु रजनी नहीं लौटी।

मुमताज ने पुनः कपूर की शरण ली। उससे रजनी के बारे में पूछा गया तो उसने बताया कि हवालात से बाहर आने पर उसने रजनी को नहीं देखा।

तरन्नुम की हत्या की घटना का प्रभाव किशोरीलाल कपूर पर यह हुआ कि वह मुमताज को फारखती देने के प्रश्न पर विचार करने लगा। उसको भय था कि इस घटना की पुनरावृत्ति न हो जाए। उसने मुमताज को दो सहस्र रुपये देकर विदा कर दिया और वह लखनऊ की गलियों में खाक छानने लगी। कपूर-जैसा रईस उसको नहीं मिल सका और न ही तरन्नुम-जैसा पथ-प्रदर्शक।

सोहन रजनी को खोजने में असफल रहा। वह पागलों की तरह दिल्ली की गलियों में अवारागर्दी करने लगा।

विनोद और सरोज ने उसको समझाने का यत्न करते हुए कहा, "सोहन ! अब दुखी होने से कुछ लाभ नहीं होगा। जो हो गया, सो हो गया। कदाचित इसी में तुम्हारी भलाई होगी। अब तुम किसी धर्म-परायण, अपनी बिरादरी और समाज की लड़की से ही विवाह कर लो। मालूम होता है रजनी ने तरन्नुम की हत्या भी इसीलिए की थी कि उसे स्वयं भी प्रायश्चित्त करने का अवसर मिल सके। ऐसा करने के बाद उसने स्वयं को तुम्हारे योग्य नहीं समझा।"

सोहन भी ऐसा ही सोचता था। उसको रजनी के शब्द अब भी

स्मरण थे। उसने कहा था, 'जिस दिन तुम मुझे नजरों से दूर हो जाने का हुक्म दोगे, रजनी इस संसार में नहीं रहेगी। सोहन का मन कहता, उसने रजनी को कभी ऐसा नहीं कहा। अतः वह अभी भी आशा करता था कि रजनी उसके जीवन में एक दिन लौटकर अवश्य आएगी।